।। ॐ श्रीपरमात्मने नमः ।।

नये रास्ते नयी दिशाएँ

परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके

प्रवचनोंका सार-संग्रह

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

नये रास्ते, नयी दिशाएँ

[परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके प्रवचनोंका सार-संग्रह]

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

संकलनकर्ता—
राजेन्द्र कुमार धवन

प्रकाशक—गीता प्रकाशन,
गीता-सत्संग-मण्डल,
कसौधन पंचायती मन्दिर (हरिवंश गली),
गोरखपुर—२७३००५ (उ०प्र०)
सम्पर्क-सूत्र—093 895 93 845; radhagovind10@gmail.com

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

नम्र निवेदन

इस युगके अप्रतिम महापुरुष परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराज रात-दिन ऐसे उपायोंकी खोजमें लगे रहते थे, जिनके द्वारा प्रत्येक कल्याणकांक्षी मनुष्य शीघ्र-से-शीघ्र तथा सुगमतापूर्वक अपना कल्याण कर सके। इस विषयमें उन्होंने अनेक नवीनतम क्रान्तिकारी उपायोंकी खोज की और उन्हें अपने प्रवचनों तथा पुस्तकोंके माध्यमसे जनतातक पहुँचाया। इसके पीछे उनका जो भाव था, वह उनके एक प्रवचनमें इस प्रकार प्रकट हुआ—

'आप ऊँचे बन जायँ, महात्मा बन जायँ, संसारमें आपकी कीर्ति हो जाय, आपके दर्शनसे लोगोंका कल्याण हो जाय—ऐसा मैं चाहता हूँ, इसीलिये ये बातें कहता हूँ।' (१.२.९९, प्रातः ९, गाँधीधाम)।

ऐसा भाव होनेके कारण ही परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराजकी पुस्तकोंमें एक विलक्षण शक्ति है, जिससे पढ़नेवालेको विशेष लाभ पहुँचता है।

प्रस्तुत पुस्तकमें परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराज द्वारा मई २००० से लेकर सितम्बर २००० तक दिये गये प्रवचनोंका सार-संग्रह दिया जा रहा है। ये प्रवचन क्रमशः ऋषिकेश, देहरादून, दिल्ली, रतनगढ़ और जसवंतगढ़में दिये गये थे। इन प्रवचनोंमें परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराजद्वारा श्रोताओंके विविध लौकिक-पारमार्थिक प्रश्नोंके उत्तर भी सम्मिलित हैं, जो सभीके लिये बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। इस पुस्तकमें मानवमात्रके कल्याणकी अत्यन्त सरल युक्तियोंका समावेश हुआ है। साधकोंको इनसे लाभ उठाना चाहिये।

सन्त शरीरसे प्रकट नहीं होते, अपितु वाणीसे प्रकट होते हैं। परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराज वर्तमानमें शरीररूपसे हमारे दृष्टिगोचर नहीं हैं, पर वाणीरूपसे वे हमारे बीच ज्यों-के-त्यों विद्यमान हैं और सदा विद्यमान रहेंगे। उनकी हृदयस्पर्शी वाणी युगोंतक साधकोंका मार्गदर्शन करती रहेगी।

परमश्रद्धेय श्रीस्वामीजी महाराजके सिद्धान्तसे, उनके विचारोंसे पूर्णतः परिचित होनेके लिये उनके सम्पूर्ण साहित्यका अध्ययन करना चाहिये।

किसी भी देश, जाति, धर्म, सम्प्रदाय आदिका कोई भी जिज्ञासु यदि प्रस्तुत पुस्तकका मनोयोगपूर्वक अध्ययन करेगा तो उसके साधनमें अवश्य उन्नति होगी, इसमें सन्देह नहीं। प्रत्येक साधकसे मेरी विनम्र प्रार्थना है कि कम-से-कम एक बार तो इस पुस्तकको अवश्य ही पढ़ें।

गंगादशहरा
वि० सं० २०६९

निवेदक—
राजेन्द्र कुमार धवन



॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः॥

नये रास्ते, नयी दिशाएँ

मंगलाचरण

पराकृतनमद्बन्धं परं ब्रह्म नराकृति।
सौन्दर्यसारसर्वस्वं वन्दे नन्दात्मजं महः॥

'जिन्होंने नमस्कार करनेवालोंके भव-बन्धनको दूर कर दिया है और जो मनुष्यके आकारमें साक्षात् परब्रह्म हैं, उन सौन्दर्यके सारसर्वस्व नन्दनन्दनरूप दिव्य तेजकी मैं वन्दना करता हूँ।'

प्रपन्नपारिजाताय तोत्रवेत्रैकपाणये।
ज्ञानमुद्राय कृष्णाय गीतामृतदुहे नमः॥

'जो शरणागत भक्तोंको कल्पवृक्षके समान मनोवांछित फल देनेवाले हैं, जिनके एक हाथमें घोड़ोंकी लगाम और चाबुक है तथा दूसरा हाथ ज्ञानमुद्रासे सुशोभित है, ऐसे गीतारूपी अमृतको दुहनेवाले भगवान् श्रीकृष्णको मैं प्रणाम करता हूँ।'

वसुदेवसुतं देवं कंसचाणूरमर्दनम्।
देवकी परमानन्दं कृष्णं वन्दे जगद्गुरुम्॥

'जो वसुदेवजीके पुत्र, दिव्यरूपधारी, कंस एवं चाणूरका नाश करनेवाले और देवकीजीके लिये परम आनन्दस्वरूप हैं, उन जगद्गुरु भगवान् श्रीकृष्णकी मैं वन्दना करता हूँ।'

वंशीविभूषितकरान्नवनीरदाभात्
पीताम्बरादरुणबिम्बफलाधरोष्ठात्।
पूर्णेन्दुसुन्दरमुखादरविन्दनेत्रात्
कृष्णात्परं किमपि तत्त्वमहं न जाने॥

'वंशीसे सुशोभित हाथोंवाले, नवीन मेघके समान कान्तिवाले, पीताम्बरधारी, बिम्बफलके समान लाल होंठोंवाले, पूर्णचन्द्रके समान सुन्दर मुखवाले तथा कमलके समान नेत्रोंवाले श्रीकृष्णसे बढ़कर मैं कोई और तत्त्व नहीं जानता।'

हरिः ॐ नमोऽस्तु परमात्मने नमः।
श्रीगोविन्दाय नमो नमः।
श्रीगुरुचरणकमलेभ्यो नमः।
महात्मभ्यो नमः।
सर्वेभ्यो नमो नमः।

*** *** ***

'सच्चिदानन्दघन परमात्माको और सन्त-महापुरुषोंको सादर अभिवादन कर आपलोगोंके समक्ष कुछ बातें कहनेके लिये एक चेष्टा कर रहा हूँ। हमारी बातोंमें अच्छी बातें मालूम दें, वे शास्त्रोंके सिद्धान्तकी, वेदोंकी, पुराणोंकी, स्मृतियोंकी, रामायण आदि ग्रन्थोंकी हैं; और त्रुटियाँ मालूम दें, वे मेरी व्यक्तिगत हैं। व्यक्तिगत बातोंकी तरफ ध्यान न देते हुए वास्तविक सिद्धान्तकी तरफ ध्यान देंगे, ऐसी प्रार्थना है।'

*** *** ***

भगवान् खास अपने हैं। संसारको अपना मानकर आप बड़ी गलती कर रहे हो! आप स्वयं चेतन होते हुए, भगवान्‌के साक्षात् पुत्र होते हुए नाशवान् चीजोंको महत्त्व दे रहे हो—यह बड़े भारी आश्चर्यकी बात है! आप भगवान्‌की दी हुई चीजोंसे सुख पा रहे हो। उनके दिये हुए अन्न, जल, हवा, प्रकाश आदिसे सुख ले रहे हो, पर इनके मालिककी तरफ ध्यान ही नहीं देते हो! उसको कभी याद तो करो। भगवान् अपनी तरफसे कितनी कृपा करते हैं! कम-से-कम उनका एहसान तो मानना चाहिये। संसारके भोगोंमें, रुपयोंमें लगकर भगवान्‌को भूल गये! वे भोग एक पलमें छूट जायँगे। शरीर भी यहीं पड़ा रह जायगा, लोग ही उठायेंगे! जो चीजें आपके कल्याणमें बाधा डालनेवाली हैं, आपके लिये महान् घातक हैं, उनमें तो आप लगे हो, पर बिना कारण कृपा करनेवाले प्रभुकी तरफ ख्याल ही नहीं करते! इसलिये आपसे प्रार्थना है कि सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाओ।

*** *** ***

भागवतमें आया है कि अनेक लोग सत्संगके प्रभावसे भगवान्‌को प्राप्त हो गये*। पर साथमें यह बात आयी है कि उन्होंने महात्माओंका संग नहीं किया था—‘**नोपासितमहत्तमाः**’। इससे इस बातकी पुष्टि होती है कि भगवान्‌के साथ सम्बन्ध होनेका, उनमें प्रेम होनेका नाम ‘सत्संग’ है। आप भगवान्‌को अपना मान लें तो सत्संग हो जायगा, सब काम ठीक हो जायगा।

जो भगवान्‌में प्रेम करे और कुछ भी चिन्तन न करे, वह संसारमें सबसे श्रेष्ठ है। संसारमें सम्पूर्ण पदार्थोंकी प्राप्ति तो कर्म करनेसे होती है, पर भगवान्‌की प्राप्ति उनको अपना माननेसे और अपने लिये कुछ न करनेसे होती है। ‘करना’ सब प्रकृतिमें है। **कुछ न करते (चुप होते) ही भगवान्‌में**

---

* भगवान् कहते हैं—

सत्सङ्गेन हि दैतेया यातुधाना मृगाः खगाः।
गन्धर्वाप्सरसो नागाः सिद्धाश्चारणगुह्यकाः॥
विद्याधरा मनुष्येषु वैश्याः शूद्राः स्त्रियोऽन्त्यजाः।
रजस्तमःप्रकृतयस्तस्मिंस्तस्मिन् युगेऽनघ॥
बहवो मत्पदं प्राप्तास्त्वाष्ट्रकायाधवादयः।
वृषपर्वा बलिर्बाणो मयश्चाथ विभीषणः॥
सुग्रीवो हनुमानृक्षो गजो गृध्रो वणिक्पथः।
व्याधः कुब्जा व्रजे गोप्यो यज्ञपत्न्यस्तथापरे॥
ते नाधीतश्रुतिगणा नोपासितमहत्तमाः।
अव्रतातप्ततपसः सत्सङ्गान्मामुपागताः॥

(श्रीमद्भा० ११। १२। ३-७)

‘निष्पाप उद्धवजी ! यह एक युगकी नहीं सभी युगोंकी एक-सी बात है। सत्संग अर्थात् मेरे सम्बन्धद्वारा ही दैत्य-राक्षस, पशु-पक्षी, गन्धर्व-अप्सरा, नाग-सिद्ध, चारण, गुह्यक और विद्याधरोंको मेरी प्राप्ति हुई है। मनुष्योंमें वैश्य, शूद्र, स्त्री और अन्त्यज आदि रजोगुणी-तमोगुणी प्रकृतिके बहुत-से जीवोंने मेरा परमपद प्राप्त किया है। वृत्रासुर, प्रह्लाद, वृषपर्वा, बलि, बाणासुर, मयदानव, विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान्, गजेन्द्र, जटायु, तुलाधार वैश्य, धर्मव्याध, कुब्जा, व्रजकी गोपियाँ, यज्ञपत्नियाँ और दूसरे लोग भी सत्संगके प्रभावसे ही मुझे प्राप्त कर सके हैं।’

‘उन लोगोंने न तो वेदोंका स्वाध्याय किया था और न विधिपूर्वक महापुरुषोंकी उपासना ही की थी। इसी प्रकार उन्होंने कृच्छ्रचान्द्रायण आदि व्रत और कोई तपस्या भी नहीं की थी। बस, केवल सत्संग—मेरे सम्बन्धके प्रभावसे ही वे मुझे प्राप्त हो गये।’

स्थिति होती है और बड़ी भारी शक्तिके साथ सम्बन्ध होता है। कारण कि जो सब जगह परिपूर्ण होता है, उसकी प्राप्ति क्रियासे नहीं होती। क्रियासे तो वह दूर होता है! शास्त्रमें लिखा है कि गहरी नींद (सुषुप्ति)-में सब प्राणियोंकी स्थिति परमात्मामें होती है। अतः कुछ भी चिन्तन न करें, न संसारका, न परमात्माका, तो परमात्मामें स्वाभाविक स्थिति होती है। बिना पढ़े सब विद्याएँ अपने-आप आती हैं। **परमात्मामें स्थित होनेसे संसारमात्रकी सेवा होती है। ऐसी सेवा आप अन्य उपायसे कर नहीं सकते।** इसका बहुत बड़ा माहात्म्य है।

कोई चिन्तन भी नहीं हो और नींद भी नहीं आये—यह बहुत बड़ा साधन है। नींद आये तो कीर्तन, नामजप आदि करो; भगवान्‌के रूप, लीला, गुण, तत्त्व आदिका चिन्तन करो। भगवान्‌के चरणोंमें गिरकर गहरे उतर जाओ। फिर भगवान्‌का भी चिन्तन मत करो।

करनेसे कुछ मिलता है, पर न करनेसे सब कुछ मिलता है। कुछ भी न करनेको गोस्वामीजीने परमविश्राम कहा है—***'पायो परम बिश्रामु'*** (मानस, उत्तर० १३० छं०)। जो देखना था, देख लिया; सुनना था, सुन लिया; कहना था, कह दिया; चिन्तन करना था, चिन्तन कर लिया; अब कुछ करना है ही नहीं। यह सार बात है।

***   ***   ***

सबसे अन्तिम, सबका निचोड़ यह बात है कि अपने केवल भगवान् हैं, उनके सिवाय कोई अपना नहीं है। भगवान् सदा हमारे साथमें रहते हैं। उनके सिवाय अन्य कोई भी सदा हमारे साथमें नहीं रहता। अगर इस बातको आप स्वीकार कर लो तो बहुत लाभकी बात है! जो चीज मिल जाय और बिछुड़ जाय, वह अपनी चीज नहीं होती। परन्तु भगवान् सदा ही मिले हुए रहते हैं, कभी बिछुड़ते नहीं। यह सब शास्त्रोंका, पुराणोंका, वेदोंका सार है! इसलिये सबके साथ प्रेमका बर्ताव करो, सबकी सेवा करो, सबका आदर करो, सत्कार करो, पर हृदयसे अपना मत मानो। हृदयसे केवल भगवान्‌को अपना मानो। दूसरोंको अपना मानोगे तो एक दिन रोना पड़ेगा। **सेवा करनेके लिये तो सभी अपने हैं, पर अपने लिये (लेनेके लिये) कोई अपना नहीं है। अपने लिये केवल भगवान् अपने हैं।** भगवान्‌को आप सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार आदि जैसा भी मानो, पर वे अपने हैं। यह आपको दुर्लभ और सार बात बतायी है, जो हरेक जगह मिलती नहीं! यह बात अधिक सन्तोंने नहीं कही है! कारण कि जिन्होंने खूब विचार करके निष्कर्ष निकाला हो, ऐसे सन्त बहुत कम हुए हैं।

एक सार बात आपको और बताता हूँ! किसीके मरनेका दुःख, शोक होता है तो इसका कारण यह है कि उससे सुख तो ज्यादा लिया है, पर सेवा कम की है। रोना स्वार्थके कारण होता है, यह सार बात है, चाहे आप मानो, चाहे मत मानो; स्वीकार करो, चाहे मत करो। रोना तभी होता है, जब पहले उससे सुख लिया है अथवा भविष्यमें उससे सुख लेनेकी आशा है।

शोक मिटानेके लिये मैं तीन बातें बताया करता हूँ—पहली, उसकी जब याद आये, तब उसको भगवान्‌के पास, उनके चरणोंमें देखो। दूसरी, उसके नामसे जप करो, कीर्तन करो, गीता, रामायण, भागवतका पाठ करो। तीसरी, छोटे-छोटे बालकोंको मिठायी दो। इससे शोक मिट जायगा। ऐसा मैंने दूसरोंसे करवाकर देखा है।

***   ***   ***

श्रोता—अभेद और अभिन्नतामें क्या अन्तर है?

स्वामीजी—निर्गुणके साथ एक होनेपर 'अभेद' होता है और सगुणके साथ एक होनेपर 'अभिन्नता' होती है। भगवान्‌के साथ अभिन्नता होती है, अभेद नहीं। अभेद ब्रह्मके साथ होता है। अभेदसे मुक्ति होती है। मनुष्य भगवान्‌को माने बिना भी मुक्त हो सकता है, सब दु:खोंसे छूट सकता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस विषयमें चित्सुखी, अद्वैतसिद्धि, खण्डनखण्डखाद्य आदि अनेक बड़े-बड़े ग्रन्थ हैं। परन्तु भगवान्‌की भक्तिके बिना प्रेम नहीं होता। भगवान्‌में प्रेम होनेसे अभिन्नता होती है। ज्ञानमें अभेद और भक्तिमें अभिन्नता होती है।

श्रोता—आप कीर्तनके बाद शान्त होनेकी बात कहते हैं, तो यह अभेद है या अभिन्नता?

स्वामीजी—मैं अभिन्नता चाहता हूँ। कीर्तनके बाद चुप रहें, जिससे अभिन्नता हो जाय, भगवान्‌में परमप्रेम हो जाय, यह चाहता हूँ।

प्रेममें चार रस होते हैं—दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य। वैष्णवाचार्योंने इनको क्रमसे माना है कि दास्यसे ऊँचा सख्य है, सख्यसे ऊँचा वात्सल्य है और वात्सल्यसे ऊँचा माधुर्य है; माधुर्यसे ऊँचा कोई रस नहीं है। परन्तु सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)-की मान्यतामें कोई रस ऊँचा-नीचा नहीं है। हनुमान्‌जीमें दास्य-रसके साथ-साथ सख्य, वात्सल्य और माधुर्य-रस भी हैं। अत: दास्य आदि किसी एक रसकी भी पूर्णता हो जानेपर किसी रसकी कमी नहीं रहती। इसमें आचार्योंके अनेक मतभेद हैं।

आचार्योंके मुख्य छ: मत हैं—शंकराचार्यका अद्वैतवाद, रामानुजाचार्यका विशिष्टाद्वैतवाद, मध्वाचार्यका द्वैतवाद, निम्बार्काचार्यका द्वैताद्वैतवाद, वल्लभाचार्यका शुद्धाद्वैतवाद और चैतन्यमहाप्रभुका अचिन्त्यभेदाभेदवाद। एक शरणानन्दजीका मत है, जो सब आचार्योंसे निराला है और बहुत जल्दी कल्याण करनेवाला है! शरणानन्दजीकी सूझ विलक्षण है! सबका जो परिणाम है, वह परिणाम उन्होंने पकड़ा है!

श्रोता—निष्कामभावमें जैसे श्री..... आचार्य हैं, ऐसे शरणानन्दजी महाराजके विषयमें आप क्या कहेंगे?

स्वामीजी—कहनेमें संकोच होता है, पर वे सबसे आगे हैं! खुद शरणानन्दजीने कहा है कि मैं क्रान्तिकारी संन्यासी हूँ; मेरी पुस्तक पढ़नेसे द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत आदि सबमें खलबली मच जायगी! उन्होंने किसी मतका खण्डन नहीं किया, पर सबका खण्डन हो गया! उनकी बातोंसे बहुत जल्दी जीवका उद्धार हो सकता है। श्रवण-मनन-निदिध्यासनकी बिल्कुल जरूरत नहीं! पर उनकी बातें, उनकी भाषा समझनी कठिन है। मेरी बातोंका मनन करे तो शरणानन्दजीकी बातें समझमें आ जायँगी।

मेरा कुछ नहीं है और मेरेको कुछ नहीं चाहिये—इन दो बातोंसे पूरा काम हो जायगा। श्रवण-मनन आदि सब इसके पेटमें आ गया!

***   ***   ***

जैसे सांसारिक उन्नतिमें पदार्थ और क्रियाका आश्रय काम आता है, ऐसे पारमार्थिक उन्नतिमें पदार्थ और क्रियाका आश्रय काम नहीं आता। **पारमार्थिक उन्नतिमें पदार्थ और क्रिया परम्परासे सहायक हो सकते हैं, पर मुख्यरूपसे भगवान्‌का आश्रय और क्रियाका त्याग ही काम आता है। क्रियाओंसे आध्यात्मिक उन्नति नहीं होती।** आदि और अन्तवाली वस्तुएँ परमात्मप्राप्तिमें कारण नहीं होतीं। जो सब जगह परिपूर्ण है, उसकी प्राप्तिमें क्रिया हेतु नहीं होती, प्रत्युत स्थिरता हेतु होती है। कारण कि सांसारिक वस्तुकी प्राप्ति अप्राप्तकी प्राप्ति है, जबकि परमात्माकी प्राप्ति अप्राप्तकी प्राप्ति नहीं है।

सांसारिक वस्तुकी सदा अप्राप्ति रहती है, पर परमात्माकी सदा प्राप्ति रहती है; परन्तु उधर हमारा ध्यान, लक्ष्य नहीं है।

संसार जैसा जाग्रत्‌में है, वैसा ही नींदमें भी है, पर उसका अनुभव नींद टूटनेपर ही होता है। नींदमें उसका अनुभव नहीं होता। इसी तरह चाहे ज्ञान हो, चाहे अज्ञान हो, परमात्मतत्त्व वैसा-का-वैसा ही रहता है, पर उसका अनुभव अज्ञानरूपी नींद टूटनेपर ही होता है। तात्पर्य है कि अनुभव न होनेपर भी परमात्मतत्त्वका अभाव नहीं हुआ है। वह पूर्णतया वैसा-का-वैसा ही है। **तात्त्विक दृष्टिसे देखा जाय तो जिसको प्राप्त करना है, वह अभी भी प्राप्त ही है और जिससे अलग होना है, वह अभी भी अलग ही है।**

*** *** ***

कम-से-कम इतनी बात तो सबको मान ही लेनी चाहिये कि हम भगवान्‌के हैं।

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥

(मानस, उत्तर० ११७। १)

परमात्माके अंश होनेके कारण आप भी सुखराशि (सुखका ढेर) हैं, पर संसारको अपना माननेके कारण आप मुफ्तमें दुःख पा रहे हैं! इतनेपर भी आप चेत नहीं करते! अपने परमपिताको आप याद ही नहीं करते! भगवान्‌के सिवाय हमारा कौन है, जो सदा हमारे साथ रहे? **यमराजके सामने भी कह दो कि 'मैं भगवान्‌का हूँ' तो यमराज भी थर्रायेगा!**

अगर आप भगवान्‌के साथ सम्बन्ध स्वीकार कर लो तो आपमें स्वाभाविक ही शुद्धि, पवित्रता आ जायगी। हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं—इतना कहनेमात्रसे आपमें स्वतः पवित्रता आती है। हम भले ही कपूत हों, पर हैं तो भगवान्‌के ही। हमें केवल अपनी कपूताई मिटानी है!

कपूताई हमारेमें पीछेसे आयी है, मूलमें नहीं है। दैवी सम्पत्ति पहलेसे है, आसुरी सम्पत्ति पीछेसे आयी है। जैसे, जो सच बोलनेवाला है, वह कितने ही रुपये देनेपर भी झूठ नहीं बोल सकता, पर झूठ बोलनेवाला थोड़े-से रुपयोंके लोभसे सच बोल देगा। **सच बोलना आपके स्वभावमें सदासे है, पर झूठ बोलनेकी आदत डाल ली, इसलिये झूठ बोलना सुगम दीखता है।** सच बोलनेवालेके लिये झूठ बोलना बड़ा कठिन है, पर झूठ बोलनेवालेके लिये सच बोलना बड़ा सुगम है। कारण यही है कि सच बोलना सदासे अपनी चीज है, झूठ अपनी चीज नहीं है। इसी प्रकार भगवान् सदासे हमारे हैं; वे अपनी चीज हैं। **मुक्ति, कल्याण अपनी चीज है, उसपर हमारा हक लगता है।** हम चौरासी लाख योनियोंमें घूमते हैं; क्योंकि वह अपना घर नहीं है, पराया घर है। अपना घर होता तो वहाँ स्थायी रहते। भगवान्‌का धाम अपना असली घर है, इसलिये वहाँ जानेके बाद लौटकर संसारमें नहीं आना पड़ता—

यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

(गीता ८। २१)

यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम॥

(गीता १५। ६)

अपने वर्ण, आश्रम, धन, पढ़ाई आदिकी मनमें जो गरमी होती है, वह झूठी है। हम भगवान्‌के हैं—यह गरमी होनी चाहिये, जो सच्ची है।

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥

(मानस, अरण्य० ११। ११)

*** *** ***

श्रोता—ईश्वरका अंश होते हुए भी जीव मायाके साथ क्यों मिल गया?

स्वामीजी—इसपर आप खुद विचार करो। यह प्रश्न खुदका है, दूसरेका नहीं। दूसरा कैसे बताये? आप बताओ कि आप मायामें क्यों बँध गये? सब जानते हैं कि शरीर, कुटुम्ब, धन आदि नहीं रहेंगे। ऐसा जानते हुए भी फिर उनमें क्यों फँसते हो? अगर नहीं जानते हो तो बताओ!

श्रोता—मायाने हमें बाँध लिया, हम क्या करें!

स्वामीजी—माया कभी बाँधती ही नहीं। आप मायाको चाहते हो, तब माया बाँधती है। आप नहीं चाहो तो माया बाँध सकती ही नहीं! क्या आप बता सकते हो कि मांसका क्या भाव है? कौन-सा मांस बढ़िया होता है? नहीं बता सकते; क्योंकि आप उसे चाहते ही नहीं। जिसको आप चाहते ही नहीं, वह आपको कैसे बाँधेगा? तात्पर्य है कि आप खुद फँसते हो, नहीं तो किसीकी ताकत नहीं कि आपको फँसा ले।

आप भगवान्‌में लग जाओ तो सब ठीक हो जायगा। **भगवान्‌के शरण हो जाओ और पुकारो कि 'हे नाथ! हे मेरे नाथ! हे मेरे स्वामी! मैं आपको भूलूँ नहीं'। फिर सब काम ठीक हो जायगा!** भगवान्‌की स्मृति सम्पूर्ण विपत्तियोंका नाश करनेवाली है—**'हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्'** (श्रीमद्भा० ८। १०। ५५)। भगवान्‌के शरण होकर देखो, क्या होता है! **सब आपको छोड़ देंगे, पर भगवान् नहीं छोड़ेंगे।**

*** *** ***

सच्चे हृदयसे आप क्या चाहते हो, भगवान्‌को या संसारको? यह आप स्वयं पहचानो। आपका मन स्वाभाविक ही संसारमें जाता है तो भगवान्‌की प्राप्ति नहीं होगी। अगर भगवान्‌को ही चाहते हो तो भगवान्‌की प्राप्ति हो जायगी। अगर भगवान्‌को ही चाहते हो तो संसारकी इच्छा छूट जायगी। अगर संसार और भगवान्—दोनोंकी चाहना रहती है तो खलबली रहेगी, शान्ति नहीं मिलेगी। दोनों चाहनाएँ एक साथ चलेगी नहीं—***'दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम'!*** इसलिये आप एक निर्णय कर लो कि हम भगवान्‌को चाहते हैं या संसारको?

संसारमें चाहे रुपया न मिले, मान न मिले, आदर-सत्कार न मिले, लोग तिरस्कार-अपमान करें, हँसी उड़ायें, हम सब सह लेंगे, पर हमें तो परमात्माकी प्राप्ति चाहिये—ऐसा भाव होगा तो जरूर उन्नति होगी, इसमें सन्देह नहीं है। परन्तु संसारको, मान-आदर आदिको चाहोगे तो संसार तो रहेगा नहीं, भगवान् मिलेंगे नहीं! कितनी ही संसारकी चाहना करो, संसार टिकेगा नहीं। सब लोग प्रायः जीनेकी चाहना रखते हुए ही मरते हैं। संसारकी चाहना किसीकी भी पूरी नहीं होती। एक सन्तके व्याख्यानमें सुना था कि चाहना न रामजीकी पूरी हुई, न रामजीके बापकी पूरी हुई, न रामजीकी लुगाईकी पूरी हुई! फिर आपकी चाहना कैसे पूरी हो जायगी? **संसारकी चाहना करनेवाले सब-के-सब रोते हैं।** धनी भी रोता है, गरीब भी रोता है। **संसारकी इच्छासे संसारकी प्राप्ति नहीं होती, पर परमात्माकी इच्छासे परमात्माकी प्राप्ति होती है—यह मैंने देखा है, पुस्तकोंमें पढ़ा है, सन्तोंसे सुना है।**

*** *** ***

श्रोता—एक बहनने पूछा है कि मेरे पीहरमें किसीने गर्भपात करवा लिया, तो मैं उस घरका

अन्न नहीं खाऊँ—यह कैसे होगा? मुझे तो पीहरमें जाना-आना पड़ता है। आप बतायें, मैं क्या करूँ?

स्वामीजी—बढ़िया बात तो वहाँका अन्न नहीं खाना ही है। परन्तु ऐसा करना कठिन पड़ेगा। इसलिये वह उनसे कहे कि 'मेरा चित्त बिलकुल राजी नहीं है; तुम्हारा अन्न खानेसे मुझे दु:ख होता है; तुम्हारा अन्न खानेसे पाप लगता है; तुम्हीं बताओ कि मैं क्या करूँ?'.....जहाँतक बने, पीहर जाय ही नहीं।

*** *** ***

जैसे घरसे दूर जानेपर एक उतावली लगती है कि जल्दी घर चलो, ऐसे भगवान्‌के पास जानेकी चटपटी क्यों नहीं लगती? जैसे कोई प्रिय स्वजन आता हो तो उसके आनेकी प्रतीक्षा करते हैं कि अब आयेंगे.....अब आयेंगे, ऐसे भगवान्‌के आनेकी प्रतीक्षा क्यों नहीं होती? अपने असली घरपर जल्दी पहुँचें, भगवान् जल्दी मिलें, ऐसी मनमें चटपटी लगनी चाहिये। भगवान् दूर थोड़े ही हैं! अगर प्रेम हो तो भगवान् नजदीक हैं—

हरि ब्यापक सर्बत्र समाना। प्रेम तें प्रगट होहिं मैं जाना॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥

(मानस बाल० १८५। ३)

जो चीज हमारे साथ रहनेवाली नहीं है, उसमें मोह हो रहा है—यह बड़े आश्‍चर्यकी बात है! जो सबके हृदयमें विराजमान है, जो अपना है और अपनेमें है, उस परमात्मामें भाव क्यों नहीं हो रहा है? हरेक भाई-बहनको सोचना चाहिये कि भगवान्‌के समान अपना कौन है? हमारा हित करनेवाला कौन है? हमारी रक्षा करनेवाला कौन है? जितने भगवान् नजदीक हैं, उतना नजदीक कोई है नहीं, हो सकता नहीं।

केवल भगवान् प्यारे लगने लग जायँ तो आप सन्त-महात्मा हो जाओगे, संसारमें पूजनीय हो जाओगे, आदरणीय हो जाओगे! यद्यपि अपनेमें पूजनीय, आदरणीय बननेकी इच्छा है ही नहीं, फिर भी लोग आदर करेंगे। रामायणका पाठ करते हैं तो गोस्वामीजी कितने प्रिय लगते हैं! ऐसे आप भी हो जाओगे! आपके दर्शनसे दूसरोंका दु:ख मिट जाय, शान्ति मिल जाय—ऐसा आप बन सकते हो।

भगवान् अर्जुनको गीता सुना सकते हैं तो क्या हमारेको हृदयमें गीता नहीं सुना सकते? क्या भगवान्‌में कोई पक्षपात है? क्या अर्जुनकी अपेक्षा हम भगवान्‌से दूर हैं?

जिनको सन्त-महात्मा तथा भगवान् प्यारे लगते हैं, उनको दुनिया प्यारी लगती है। उनका किसीसे भी द्वेष नहीं होता; क्योंकि उनकी दृष्टिमें सब हमारे प्रभुके हैं! इतना ही नहीं, उनको वृक्ष, ईंट, पत्थर आदि भी प्यारे लगते हैं कि ये भी हमारे प्रभुके हैं! उनका किसी भी मनुष्यसे किंचिन्मात्र भी स्वार्थका सम्बन्ध नहीं होता। एक पुस्तकमें मैंने पढ़ा कि भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जोड़ो तो सबके साथ प्रेमसे बोलो, सबको प्रेमसे देखो, प्रेमसे सुनो। आपकी सब क्रियाएँ नि:स्वार्थ प्रेमसे भरी होनी चाहिये। **निष्कामभावसे आप कुत्ते, गधेसे भी प्रेम करो तो वह भगवान्‌में प्रेम होगा।** सबके साथ प्रेमपूर्वक बर्ताव करो तो भगवान् राजी हो जायँगे।

*** *** ***

शरीरके बिना हम क्या कर सकते हैं? अचाह हो सकते हैं, अक्रिय हो सकते हैं। कुछ भी करनेमें शरीरकी जरूरत है, पर कुछ भी न करनेमें शरीरकी क्या जरूरत? चाह करनेमें शरीरकी

जरूरत है, पर अचाह होनेमें शरीरकी क्या जरूरत? देखने-सुननेमें आँख-कानकी जरूरत है, पर कुछ भी न देखने-सुननेमें आँख-कानकी क्या जरूरत? **क्रिया करनेमें तो शरीरकी जरूरत है, पर क्रिया-रहित होनेमें शरीरकी जरूरत नहीं है।**

पापी या पुण्यात्मा शरीरी (स्वयं) बनता है, शरीर नहीं बनता। मोटरके नीचे आकर कोई आदमी मर गया तो दण्ड ड्राइवरको होगा, मोटरको नहीं, जबकि ड्राइवरने उस आदमीको छुआ ही नहीं! अगर उस ड्राइवरके पास एक दूसरा ड्राइवर भी बैठा हो तो उसको दण्ड नहीं होगा। दण्ड चलानेवाले (कर्ता)-को होगा। कोई भी काम करनेमें कर्ताकी जरूरत होती है, पर कोई भी काम न करनेमें कर्ताकी क्या जरूरत है? शरीर तो मरनेपर यहीं रह जायगा, फिर पाप-पुण्यका फल कौन भोगेगा? जो शरीरको चलाता है, उसका चालक (कर्ता) बना हुआ है, वह (स्वयं) भोगेगा।

मनुष्योंने प्राय: सांसारिक बातें और पारमार्थिक बातें एक समझ रखीं हैं, पर एक हैं नहीं। दोनोंमें बड़ा भारी फर्क है। **संसारके काममें क्रियाकी जरूरत है, पर पारमार्थिक काममें अक्रियाकी जरूरत है।** अक्रियताकी प्रधानतासे मुक्ति होती है। अचाह और अक्रिय होते ही संसारसे सम्बन्ध-विच्छेद हो जाता है। इन बातोंपर गहरा विचार करना चाहिये।

एक मार्मिक बात है कि जितनी भी क्रियाएँ हैं, सब कर्मयोगके लिये अर्थात् दूसरोंके हितके लिये ही हैं। शरीर-मन-वाणीसे जो कुछ भी करना है, वह केवल संसारके लिये है, अपने लिये कुछ नहीं है। अपने लिये कुछ भी करना भोग है, बन्धन है। कारण कि कोई भी क्रिया करेंगे तो उसका आरम्भ और अन्त होगा, पर आपका आदि-अन्त नहीं होता, फिर क्रिया आपके लिये कैसे हुई? हरेक पदार्थ उत्पन्न और नष्ट होता है, फिर वह आपके लिये कैसे हुआ? अपने लिये तप करना, ध्यान करना भी भोग है! भगवान्‌के लिये करना योग है। **जो अपने लिये न करके केवल भगवान्‌के लिये करता है, वह सन्त-महात्मा, जीवन्मुक्त हो जाता है!** आप प्रत्येक क्रिया भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये करो तो आपकी सब क्रियाएँ भजन हो जायँगी। काम-धंधा भगवान्‌के लिये और भगवान्‌की प्रसन्नता आपके लिये!

***　　　***　　　***

इच्छाएँ मनुष्यके लिये बड़ी बाधक है। इच्छाओंमें एक कायदा है कि सबसे बड़ी इच्छाके अन्तर्गत सब इच्छाएँ रहती हैं। बड़ी इच्छाकी पूर्ति होनेपर उसके अन्तर्गत रहनेवाली सब इच्छाएँ नष्ट हो जाती हैं, ऐसा कानून है। **बड़ी इच्छा है—परमात्मा मिल जायँ, परमात्माके दर्शन हो जायँ, परमात्मतत्त्वका बोध हो जाय, परमात्मामें प्रेम हो जाय। यह मूल इच्छा है, जिसकी छायामें दूसरी सब इच्छाएँ हैं।** भोग और संग्रहकी इच्छा उस परमात्माकी इच्छाके अन्तर्गत है।

जीवात्मा परमात्माका अंश है, इसलिये इसकी मूल इच्छा तो परमात्माकी है, पर खुदको मालूम नहीं है कि मैं क्या चाहता हूँ! वह अपनेमें कमीका अनुभव तो करता है, पर कमी क्यों है और कैसे मिटेगी—इस बातको नहीं जानता। कमीको मिटानेके लिये यह भोगोंकी तथा संग्रहकी इच्छा करता है। जबतक यह इच्छा रहेगी, तबतक इसका कल्याण नहीं होगा। अपनी मूल इच्छाको न पहचाननेसे अनेक इच्छाएँ पैदा हो जाती हैं। अगर यह परमात्माकी इच्छाको प्रबल बना ले तो दूसरी सब इच्छाएँ मिट जायँगी। जिससे दूर होनेपर जीव दु:खी हुआ है, वह दूरी मिट जाय तो सब इच्छाएँ मिट जायँगी, पैदा ही नहीं होंगी। **परमात्माकी इच्छा करेंगे तो उसके पेटमें सम्पूर्ण संसारकी इच्छाएँ आ जायँगी, सब इच्छाएँ मिट जायँगी!** जैसे, हजार रुपये मिल जायँ तो पाँच रुपयेकी इच्छा मिट जाती है। हजार रुपया और पाँच रुपया तो एक जातिके हैं, पर परमात्मा और संसार एक

जातिके नहीं हैं। परमात्मा चेतन व अविनाशी हैं, संसार जड़ व नाशवान् है। मनुष्यका दर्जा संसारसे भी अधिक है।

जो भगवान्‌के भक्त होते हैं, उनमें रुपयोंकी इच्छा होती ही नहीं; क्योंकि उनकी दृष्टिमें रुपया बड़ी वस्तु है ही नहीं। सन्तोंके पास कुछ नहीं होनेपर भी वे बड़ी मस्तीमें, आनन्दमें रहते हैं; क्योंकि उनको सबसे बड़ी वस्तु मिल गयी। आप यह मान लो कि 'भगवान् मेरे हैं' तो आपकी सब इच्छाएँ मिट जायँगी। एक भगवान् अच्छे लगेंगे तो फिर राज्य, सम्पत्ति, वैभव, मान, सत्कार, आदर आदि सब तुच्छ हो जायँगे।

*** *** ***

छोटे-से-छोटे तथा बड़े-से-बड़े सब जीव भगवान्‌के अंश हैं। इन जीवोंके भीतर चाहना भगवान्‌की ही है, पर भगवान्‌से विमुख होकर दूसरी चीजोंकी चाहना पैदा कर ली—यह बाधा है। इसी कारण नाशवान्‌में आकर्षण हो गया। वास्तवमें यह आकर्षण भगवान्‌का है; क्योंकि हम उन्हींके अंश हैं। यह बात इतनी विलक्षण है कि इसकी महिमा कहनेमें नहीं आती। यह बात पुस्तकोंमें भी मिलती नहीं। **पुस्तकोंमें मार्मिक बातें बहुत कम मिलती हैं। कारण कि पुस्तकें प्रायः पण्डितोंकी बनायी हुई मिलती हैं और उन्हींका अध्ययन करते हैं। अनुभवी पुरुषोंकी पुस्तकें बहुत कम हैं और वे पण्डिताईकी पुस्तकोंके आगे छिप गयीं!**

सभी मनुष्य सुख, शान्ति, आनन्द चाहते हैं, दुःख नहीं चाहते, तो यह क्या है? यह मूलमें भगवान्‌की चाहना है। कोई भी चाहना पैदा होती है तो उसके मूलमें भगवान्‌की चाहना है। सब चाहनाओंके भीतर भगवान्‌की चाहना है। कोई मनुष्य कसाई है, क्रूर है, उसके भीतर भी भगवान्‌की चाहना है। भगवान्‌से विमुख होनेपर ही दूसरी चाहनाएँ पैदा हुई हैं।

भगवान्‌को पुकारो 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!'। बहुत फायदा होगा, जरूर होगा! क्योंकि भगवान् हमारे हैं। **'हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं'—यह असली मन्त्र है। इसे मान लो तो थोड़े दिनोंमें आपका जीवन बदल जायगा।**

*** *** ***

परमात्मा माननेका विषय है। **हम सदा भगवान्‌के हैं और भगवान् हमारे हैं—यह बात न दीखनेपर भी मान लेनी चाहिये। फिर यह माना हुआ नहीं रहेगा, साक्षात् हो जायगा।** परमात्माको हम अपना मान सकते हैं, पर जान नहीं सकते। कारण कि हमारे पास जो इन्द्रियाँ हैं, बुद्धि है, ये परमात्माको पकड़ नहीं सकते। जैसे दीवार हमारे हाथसे पकड़में नहीं आती, ऐसे परमात्मा हमारी मन-बुद्धि-इन्द्रियोंसे पकड़में नहीं आते। परन्तु भगवान् हमारी इन्द्रियोंसे पकड़में आ जायँ—ऐसे हम बन सकते हैं। हम भगवान्‌को नहीं पकड़ सकते, पर भगवान् चाहें तो वे पकड़में आ सकते हैं।

संसारमात्र मिलकर आपको एक कौड़ी भी नहीं दे सकता, पर आप संसारमात्रको ज्ञान दे सकते हैं। आप साक्षात् परमात्माके अंश हैं। संसार प्रकृतिसे रचा हुआ है। इसलिये आप संसारसे ऊँचे हैं। आपका मूल्य संसारसे अधिक है। अभी आप मानते हैं कि मैं तो छोटा हूँ, संसार बहुत बड़ा है। वास्तवमें आँखके अन्तर्गत दृश्य आता है, दृश्यके अन्तर्गत आँख नहीं आती। इसलिये संसार आपके अन्तर्गत है। **संसार आपसे छोटा है, पर आपने बड़ा मान लिया! संसार निरन्तर आपसे अलग हो रहा है और अभावमें जा रहा है—इसके सिवाय उसके पास कुछ नहीं है! उसको आपसे कोई मतलब नहीं!** संसार आपके साथ नहीं रह सकता और भगवान् आपका त्याग नहीं कर सकते। आप संसारको नजदीक समझते हैं, इसलिये भगवान् आपको दूर मालूम देते हैं।

***　　***　　***

अहंकार दो प्रकारका है। एक अहंकार प्रकृतिका है, जिसको 'धातुरूप अहंकार' कहते हैं, और एक अहंकार जड़-चेतनकी ग्रन्थि है, जिसको 'तादात्म्यरूप अहंकार' कहते हैं। मुक्ति होनेपर तादात्म्यरूप अहंकार ही मिटता है, धातुरूप अहंकार नहीं मिटता। इसलिये मुक्त पुरुषके मन-बुद्धि-अहंकार नहीं मिटते। **तत्त्वज्ञान होनेपर शरीर नहीं मिटता, प्रत्युत शरीरमें जो मैं-पन है, वह मिटता है।** वह मैं-पन ही बन्धन है। इस मैं-पनमें ही राग-द्वेष, काम-क्रोध आदि विकार रहते हैं। यह मैं-पन न दृश्य है, न दृष्टा है, प्रत्युत केवल मान्यता है। इससे भी आगे बढ़नेपर शरीरादि भी चिन्मय हो जाते हैं, पर यह बात बहुत कठिन है! जैसे, मीराबाई, कबीर और तुकारामके शरीर भी मिले नहीं, चिन्मय हो गये! यह तत्त्वज्ञानसे भी ऊँची चीज है! **हमारी दृष्टिमें जड़ और चेतन दो हैं, पर वास्तवमें एक चिन्मय तत्त्व ही है, जड़ है ही नहीं!**

अहंकार सर्वथा मिटनेपर महापुरुषमें ज्ञान और भक्तिका भेद नहीं रहता।

एक बारीक बात है, जिसका विवेचन मेरेको किसी पुस्तकमें मिला नहीं! जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—ये तीन अवस्थाएँ हैं। इनमें जाग्रत् और स्वप्न-अवस्थामें तो तादात्म्यरूप अहंकार रहता है, पर सुषुप्तिमें अहंकार लीन हो जाता है। आप अहंकारसे रहित हैं—यह अनुभव सुषुप्तिमें होता है। सुषुप्तिमें कोई व्यवहार नहीं होता। सुषुप्तिसे जागनेपर मनुष्य कहता है कि मेरेको ऐसी गाढ़ नींद आयी कि कुछ भी पता नहीं था। कुछ भी पता नहीं था—यह अहंकारके अभावको बताता है। कारण कि अहंकारके रहते हुए वह 'कुछ भी पता नहीं था'—ऐसा नहीं कह सकता। आप स्वयं अहंकार-रहित हैं अर्थात् आप अलग हैं, अहंकार अलग है—यह ज्ञान सुषुप्तिमें होता है। परन्तु सुषुप्तिमें अहंकार लीन होता है, मिटता नहीं।

***　　***　　***

श्रोता—संसारमें मेरा कुछ नहीं है—ऐसा अनुभव होनेपर भी इसमें आकर्षण क्यों हो रहा है?

स्वामीजी—मेरा कुछ नहीं है—यह आपकी सुनी हुई बात है, अनुभवमें नहीं आयी है, समझमें भी नहीं आयी है! तोतेकी तरह सुनकर सीख ली! सुनी हुई बात बहुत थोड़ी काम आती है। ऐसी हालतमें आप आर्त होकर भगवान्‌से प्रार्थना करो। इससे आपका काम बन सकता है। क्रियासे काम नहीं बनेगा।

वास्तवमें लगन पहले है, उपाय पीछे है। **लगनके बिना उपाय काम नहीं देता।** लगन न हो तो कितने ही उपाय पूछ लो, सुन लो, काम नहीं देंगे। उपाय तब काम देंगे, जब आपकी लगन होगी। लगन हो तो उपाय अपने-आप पैदा होते हैं। जिसके राज्यमें सूर्य अस्त नहीं होता था, उस इंग्लैंडके राजा एडवर्ड अष्टमने एक तलाकशुदा स्त्रीको पानेके लिये राज्यका त्याग कर दिया, तो क्या आप भगवान्‌के लिये त्याग नहीं कर सकते? क्या भगवान्‌की एक स्त्री-जितनी भी इज्जत नहीं है? परन्तु संसार बातोंसे नहीं छूटता। अगर लगन लग जाय तो छूट जायगा। **खुदकी लगन लग जाय तो सब काम ठीक हो जाता है। इसलिये आप भीतरकी लगन बढ़ाओ। इसके लिये प्रार्थना करना अच्छा है। रोकर प्रार्थना करो तो बहुत बढ़िया है, नहीं तो नकली प्रार्थना भी करते-करते असली हो जायगी, भगवान्‌की कृपासे!** अपने मनमें जैसा भाव हो, वैसे पुकारो। पुकारते-पुकारते भगवत्कृपासे भाव बदल जायगा। इसके सिवाय दूसरा उपाय नहीं है।

आप सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाओ तो आपका प्रारब्ध, भाग्य बदल जायगा। केवल लगनके कारण कितने साधारण लोग भी सन्त-महात्मा हो गये। जबतक आपका हृदय सच्चा नहीं होगा, तबतक

बढ़िया-से-बढ़िया बातें भी आपके काम नहीं आयेंगी। बढ़िया सत्संग मिल जाय, अच्छे महात्मा मिल जायँ, बढ़िया ग्रन्थ मिल जायँ तो भी वे आपके काम नहीं आयेंगे। लोग कहते हैं कि अच्छा सन्त, गुरु नहीं मिलता, पर आप जबतक अच्छे नहीं होंगे, तबतक वे नहीं मिलेंगे। **आप अच्छे हो जाओ तो बढ़िया-से-बढ़िया गुरु, सन्त, ग्रन्थ मिल जायँगे; अच्छी युक्तियाँ मिल जायँगी।** इसलिये केवल अपनी लगन बढ़ाओ। भोजन बढ़िया मिल जायगा, पर भूख अपनी चाहिये। भूख नहीं हो तो बढ़िया भोजनसे भी क्या होगा? **आप सच्चे हृदयसे लगन लगाओ तो सब चीजें मिलनेको तैयार हैं!** अच्छे-अच्छे महात्मा आपको ढूँढ़ेंगे! आम पककर तैयार हो जाय तो तोता अपने-आप उसके पास आता है। आप तैयार हो जाओ तो अच्छे सन्त, अच्छे ग्रन्थ, अच्छी युक्तियाँ खुद आपके पास आयेंगी।

'सत्' के पास आप जायँगे नहीं और 'असत्' आपके पास ठहरेगा नहीं, फिर कल्याण कैसे होगा?

***   ***   ***

शरीर अलग चीज है, हम अलग चीज हैं—यह साधकमात्रको स्वतः-स्वाभाविक अनुभव होना चाहिये। जैसे वृक्ष दूर दीखता है, खम्भा दूर दीखता है, मकान दूर दीखता है, ऐसे ही शरीर साफ दूर दीखना चाहिये। जैसे मकानमें रहते हुए हम मकान नहीं होते, ऐसे ही शरीरमें रहते हुए हम शरीर नहीं होते। हमारा स्वरूप सत्तामात्र है।

संसार हमारे काम आ जाय—यह गलती है। हमारे द्वारा संसारकी सेवा हो जाय—यह सही है। संसार बड़ा है, शरीर छोटा है। छोटा ही बड़ेके आश्रित होता है। अतः शरीर संसारकी सेवाके लिये है, संसार शरीरकी सेवाके लिये नहीं है।

शरीरसे जो साधन होता है, वह साधन भी दामी नहीं होता। **भीतरसे 'भगवान् मेरे हैं'—इसका जितना मूल्य है, उतना शरीरसे किये जप आदिका मूल्य नहीं है।** पतिव्रता स्त्री पतिका नाम नहीं लेती, पर पतिमें प्रेम कम होता है क्या? उसको सैकड़ों आदमियोंमें केवल पति अपना दीखता है।

नहीं रट्या तो का भया, घट्या न चाहिय हेत।
जैसे नार सुहागणी, पिव को नाम न लेत॥

परमात्माका अंश होनेसे आपकी एकता परमात्माके साथ है। शरीरकी एकता संसारके साथ है। **शरीर अपना नहीं दीखे तो कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग—तीनों सुगम हो जायँगे। इतने वर्ष सत्संग करके भी शरीरको संसारका और अपनेको भगवान्‌का नहीं माना तो क्या किया!** पण्डिताईकी सीखी हुई बातें काम नहीं देतीं।

कोई भी भोग भोगते समय हम संसारको सच्चा मानते हैं। भोजन, वस्त्र, निद्रा, मान, बड़ाई, आदर, सत्कार, आराम आदि जो भी सुख लिया जाता है, वह संसारको सच्चा मानकर ही लिया जाता है। कारण कि **संसारको सच्चा, स्थायी माने बिना कोई भी भोग नहीं होता। कोई भी भोग भोगोगे तो संसार नाशवान् है—यह बात भूल जाओगे। अतः बुद्धि भ्रष्ट होती है, तभी भोग भोगते है!** भगवान्‌में जो विश्राम होगा, वह 'परम विश्राम' होगा, और संसारमें जो विश्राम होगा, वह 'भोग' होगा।

***   ***   ***

श्रोता—भगवान्‌में लगनेपर संसारको छोड़ना पड़ता है या स्वतः छूट जाता है?

स्वामीजी—भगवान्‌में लगनेपर संसारको छोड़ना नहीं पड़ता, वह स्वत: छूट जाता है। भूख लगनेपर यह कहना नहीं पड़ता कि तुमको भोजन करना चाहिये। भगवान्‌में लगनेपर मनमें स्वाभाविक ही संसारकी रुचि नहीं रहती कि रुपया कमाएँ, भोग भोगें, संग्रह करें, आदि। आपको प्यास लगे तो ठण्डा पानी क्यों पीते हो? क्या किसीके उपदेशसे पानी पीते हो?

एक बार मैंने सत्संगमें पूछा कि क्या सुनाऊँ, तो किसीने कहा कि वैराग्यकी बात बताओ। मेरे मनमें आयी कि **अभी यहाँसे उठकर चल दूँ, फिर पीछे कभी आऊँ ही नहीं! इसको वैराग्य कहते हैं!** वैराग्यमें एक रस है, आनन्द है, शान्ति है! पर इसका पता सच्चा वैराग्य होनेसे ही लगता है। वैराग्यवान्‌के सुखको वैराग्यवान् ही जानता है।

***　　　　***　　　　***

भगवान् जीवको मनुष्यशरीर वास्तवमें अपने लिये देते हैं! भगवान्‌की एक भूख अर्थात् कमी है। भगवान् प्रेमभावके भूखे हैं। इस प्रेमभावकी भूखको मनुष्य ही मिटा सकता है! परन्तु प्रेम करनेवाले भक्त बहुत कम हैं। **प्रेमी भक्त वे होते हैं, जो संसारकी किसी वस्तुमें लुब्ध नहीं होते। संसारमें भी ऐसी ताकत नहीं है कि भक्तको अपनी तरफ खींच ले!** जो संसारमें खिंच जाते हैं, वे भक्त नहीं होते, सन्त नहीं होते।

जो भगवान्‌का आश्रय लेकर साधन करते हैं, उनके लिये भगवान् बहुत सुलभ हो जाते हैं। इसलिये भगवान्‌के चरणोंका आश्रय लेकर साधन करो। एक बात याद रखो कि हम भगवान्‌के खास बेटा-बेटी हैं। अपने भीतर इस बातको जमा लो कि हम भगवान्‌के हैं।

***　　　　***　　　　***

मूलमें जीवको भगवान्‌की आवश्यकता है। पर इस आवश्यकताको भूल जानेसे अनेक इच्छाएँ पैदा हो गयीं, जो कभी पूरी नहीं होतीं। ज्यों-ज्यों इच्छाएँ पूरी होती हैं, त्यों-ही-त्यों और इच्छाएँ बढ़ती जाती हैं। अगर एक भगवान्‌की प्राप्ति हो जाय तो सभी इच्छाएँ मिट जायँगी।

मनुष्यमें यह वहम रहता है कि रुपये मिलनेसे शान्ति मिल जायगी, पर यह बिलकुल झूठी बात है! आप मानो चाहे मत मानो, रुपयोंसे आपकी भूख मिटनेवाली नहीं है। उल्टे भूख और बढ़ेगी। गरीब आदमीकी सौ-दो सौ रुपयोंकी भूख होती है, पर धनी आदमीकी करोड़ों रुपयोंकी भूख होती है, और घाटा भी करोड़ों रुपयोंका होता है! गरीब आदमीको उतना घाटा पीढ़ियोंमें भी नहीं हुआ! गरीब आदमीको थोड़ी-सी चीजोंकी जरूरत होती है, पर धनी आदमीकी मोटर आदि बड़ी-बड़ी चीजोंकी जरूरत रोजाना पड़ती है। इस विषयको मैंने खूब देखा है, अध्ययन किया है। **आप मानते हैं कि रुपये मिलनेसे ठीक हो जायगा, पर रुपये मिलनेसे और आग लग जायगी!** ज्यों रुपये मिलेंगे, त्यों दरिद्रता बढ़ेगी। मनुष्य समझता है कि रुपये मिल जायँ तो एक घड़ी खरीद लें, पर रुपये मिलनेपर बड़ी-बड़ी मोटरें खरीदनेकी मनमें रहती है, पर मिलती नहीं हैं! आपकी दरिद्रतामें और धनियोंकी दरिद्रतामें कुछ भी फर्क नहीं है। आपलोगोंको यह वहम है कि रुपये होनेसे दरिद्रता मिटती है, पर वास्तवमें रुपये होनेसे दरिद्रता बढ़ती है.....बढ़ती है.....बढ़ती है! **रुपयोंसे दरिद्रता नहीं मिटती।** इस बातको आप मान लो तो बड़ी शान्ति मिलेगी। आप कृपा करो, जो मिला है, उसमें सन्तोष करो।

कुछ भी पासमें न हो तो बड़ी शान्ति रहती है, यह मेरी देखी हुई बात है! आपके मनमें है कि स्वामीजी समझते नहीं, पर आपसे दूना समझता हूँ! आपने तो केवल रुपयोंको रखकर देखा

है, पर मैंने रुपयोंको रखकर भी देखा है और छोड़कर भी देखा है! रुपयोंके बिना तकलीफ उठानी पड़ती है, यह भी मैंने देखा है। **पर रुपये नहीं रखनेसे जो शान्ति मिलती है, वह रुपयोंसे नहीं मिलती।** यह बिलकुल पक्की बात है; परन्तु यह बात साधुओंको भी जँचती नहीं! क्या करें!

एक सन्तोष धारण कर लो तो बहुत शान्ति मिलेगी। मैं पैसा छोड़नेके लिये नहीं कहता। मैं कहता हूँ कि जितना है, उतनेमें सन्तोष करो। छोड़ दो विशेष आनन्द होगा, इसमें सन्देह नहीं है! भूख तो है परमात्माकी, पर पूरी करना चाहते हैं रुपयोंसे! असम्भव बात है!

*** *** ***

श्रोता—चुप-साधनमें मुझे शान्ति मिलती है, पर आप कहते हैं कि शान्तिका भी भोग नहीं करना चाहिये। शान्ति तो मिलती है, पर उसका भोग नहीं करना चाहिये—इसका तात्पर्य क्या है?

स्वामीजी—पारमार्थिक मार्गमें यदि कोई बाधा लगती है तो वह सुखभोगसे ही लगती है। मार्गमें भी सुख भोगोगे तो सिद्धि कैसे होगी? जहाँ आप सुख भोगोगे, वहीं अटकाव होगा।

शान्ति आरम्भमें है, जो कर्मयोगका खास फल है। संसारके सम्बन्धसे अशान्ति होती है, पर सम्बन्धके त्यागसे शान्ति मिलती है। शान्तिमें सांसारिक सुखसे विलक्षण सुख मिलता है। अगर साधक शान्तिका सुख भोगेगा तो वहीं अटक जायगा। इसमें एक बात जरूर है कि कुछ समय अटकावके बाद आप अपने-आप आगे चलोगे। शान्तिसे आपकी स्वतः अरुचि हो जायगी। परन्तु इसमें समय लगेगा। इससे आगे स्वरूपमें स्थिति होनेपर अखण्ड आनन्द मिलता है। अगर अखण्ड आनन्दका सुख लोगे तो आगे भक्ति (परमात्मप्राप्ति)-का अनन्त आनन्द नहीं मिलेगा। अखण्ड आनन्दकी भी उपेक्षा करोगे, तब भक्तिका रस मिलेगा। तात्पर्य है कि कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग आदि सबमें सुखभोग बाधक है। साधक जहाँ सुख लेता है, वहीं अटक जाता है—यह सार बात है।

अगर साधक पहलेसे ही समझ ले कि जितना नाशवान् जड़-विभाग (क्रिया और पदार्थ) है, वह बिलकुल संसारके लिये ही है, मेरे लिये है ही नहीं तो बहुत लाभकी बात है! तत्त्वज्ञ, जीवन्मुक्त महात्मा बहुत हुए हैं, पर उनमें क्रिया और पदार्थका सर्वथा त्याग करनेवाले महात्मा बहुत कम मिलेंगे। प्रायः क्रिया और पदार्थमें लगे हुए ही मिलेंगे। स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीर केवल दूसरोंकी सेवाके लिये ही है, हमारे लिये नहीं है—यह बात व्याख्यानोंमें भी बहुत कम आती है, विवेचनमें भी बहुत कम आती है, आध्यात्मिक ग्रन्थोंमें भी बहुत कम आती है, सुननेमें भी बहुत कम आती है!

शान्तिका सुख लोगे तो सिद्धिमें बहुत दिन लग जायँगे, और सुख नहीं लोगे तो जल्दी पार हो जाओगे। **जीवन्मुक्तिका भी सुख त्यागनेसे असली प्रेमकी प्राप्ति होगी।** भक्तिमें भी अपना सुख लोगे तो ऊँचे नहीं बढ़ोगे। सबसे बढ़िया बात यह है कि भगवान्‌को भी सुख देना है, सुख लेना नहीं है। भगवान्‌को सुख देनेका यह अर्थ नहीं है कि भगवान् दुःखी हैं। आप सुख भोगनेसे दुःखी हो जाओगे, इसलिये यह सुखके त्यागका एक तरीका है। **भगवान्‌को सुख देनेसे वे बहुत राजी होते हैं; क्योंकि उनको सुख देनेसे आपके सुखका बन्धन छूटेगा!**

श्रोता—स्वतः जो आनन्द आता है, उसका क्या करें?

स्वामीजी—उसकी उपेक्षा करनी चाहिये। उसमें असन्तोष करें कि इतना ही नहीं, और होना चाहिये। कर्मयोग, ज्ञानयोग, ध्यानयोग आदिसे अपने-आप सुख होगा, पर उसमें राजी नहीं होना है और उसे मिटाना भी नहीं है। उसमें अटकना नहीं है, आगे-से-आगे बढ़ना है। वह सुख त्याज्य भी नहीं है और ग्राह्य भी नहीं है, प्रत्युत उपेक्षणीय है। परन्तु संसारका सुख त्याज्य है। कारण

कि सांसारिक सुख दु:खका मूल होनेसे दु:ख देगा, पर साधनजन्य सुख दु:ख नहीं देगा, प्रत्युत अटकाव करेगा। सुख होना चाहिये, पर उसका संग नहीं होना चाहिये। ज्ञान होना चाहिये, पर उसका संग नहीं होना चाहिये। सुख और ज्ञानका संग ही बाँधता है—**'सुखसङ्गेन बध्नाति ज्ञानसङ्गेन चानघ'** (गीता १४। ६)।

जबतक जड़तासे सम्बन्ध-विच्छेद नहीं होता, तबतक परमात्मामें तल्लीनतासे होनेवाला सुख भी बाधक है; साधनकी ऊँची-से-ऊँची अवस्था होनेपर भी बन्धन रहेगा। इसलिये **साधकमात्रको यह बात याद रखनी चाहिये कि किसीसे भी सम्बन्ध नहीं जोड़ना है। अगर वह अपना कल्याण चाहता है तो किसीके साथ भी बिलकुल सम्बन्ध न जोड़े। वास्तवमें न संसार बाधक है, न माया बाधक है, न अविद्या बाधक है, प्रत्युत सम्बन्ध ही बाधक है।** किसीसे सम्बन्ध जोड़ना अपना पतन करना है। इसमें सन्देह नहीं है।

***　　***　　***

श्रोता—हमने कोई गलती नहीं की, पर दूसरा झूठा आरोप लगाये तो क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—आनन्द मनाना चाहिये! झूठे आरोपसे कभी डरना नहीं चाहिये। झूठ झूठ ही है, उससे क्या डरना! अपना चरित्र और नीयत ठीक है तो डरना नहीं चाहिये। अपने चरित्र और नीयतपर विश्वास रखो। कुछ दिन वे आपको तकलीफ दे सकते हैं, पर आपकी नीयत अच्छी है तो अन्तमें ठीक होगा।

श्रोता—भगवान्‌के लिये व्याकुलता कैसे बढ़े?

स्वामीजी—संसारका राग, आसक्ति, प्रियता छोड़नेसे। संसारका सुख लेते रहते हैं तो व्याकुलता कैसे बढ़ेगी? कुछ नहीं खानेसे भूख तेज लगती है, पर दिनभर खाते रहें तो भूख कैसे लगेगी?

***　　***　　***

भगवान्‌के सम्मुख होनेके लिये संसारसे विमुख होना पड़ता है—यह खास बात है। भगवान्‌के सम्मुख तभी होंगे, जब संसारके सुखभोग, आराम, आदर, सत्कार आदिसे विमुख होंगे। संसारके भोग अच्छे लगते हैं तो चाहते हुए भी भगवान्‌के सम्मुख नहीं हो सकते। **हरेक साधनमें यह कायदा है कि उस साधनसे जो विरुद्ध हो, उसके प्रति अपनी उपेक्षा हो, उदासीनता हो, विमुखता हो।** विमुख होनेकी आवश्यकता ज्यादा है। विमुख होनेपर फिर सम्मुख होना सुगम होता है। विमुख नहीं होनेपर सम्मुख होनेमें कठिनता पड़ती है। जबतक संसारसे विमुख नहीं होंगे, तबतक दुविधा रहेगी—*'दुविधा में दोनों गये माया मिली न राम'*।

संसारसे विमुख होना साधकमात्रके लिये आवश्यक है। संसार है तो अच्छी बात, नहीं है तो अच्छी बात; बढ़िया है तो अच्छी बात, घटिया है तो अच्छी बात, हमें उससे मतलब नहीं है। हमें उससे कुछ लेना-देना नहीं है। हमारा उससे सम्बन्ध नहीं है। इस तरह पहले संसारकी उपेक्षा होती है, फिर अभाव हो जाता है। **जो भगवान्‌के सम्मुख हो जाता है, उसको केवल भगवान् ही दीखते हैं।** गोपिकाओंको सब जगह केवल भगवान् ही दीखते थे।

संसारकी सेवा करना भी उससे विमुख होनेका उपाय है। यह सिद्धान्त है कि अपने पास एक परमात्माके सिवाय जितनी भी जड़ वस्तुएँ हैं, वे केवल संसारकी सेवाके लिये ही हैं। ऐसा माननेसे सुगमतासे निष्कामभाव आ जाता है, नहीं तो निष्कामभाव होना बड़ा कठिन होता है।

जो भगवान्‌से कुछ भी चाहते हैं, वे भगवान्‌को साधन मानते हैं, साध्य नहीं मानते। अगर भगवान्‌को

साध्य मानें, इष्टदेव मानें तो कामना नहीं कर सकते। जिस चीजकी कामना की, उस चीजका महत्त्व रहा, भगवान्‌का महत्त्व नहीं रहा। जो भगवान्‌को साध्य न मानकर साधन मानता है, उसको भगवत्प्राप्ति नहीं हो सकती। वह जिस चीजकी कामना करता है, वह चीज मिलेगी, भगवान् कैसे मिलेंगे? वह उस चीजके सम्मुख होगा, भगवान्‌के सम्मुख नहीं होगा। अगर संसारके भोग सुखदायी दीखते हैं तो भगवान् नहीं मिलेंगे।

जैसे संसारकी सेवा करके संसारसे कुछ लेना नहीं है, ऐसे ही भगवान्‌का भजन करके भगवान्‌से भी कुछ लेना नहीं है। भगवान् देना चाहें तो भी लेना नहीं है! हमें तो केवल भगवान्‌में प्रेम चाहिये।

श्रीजीकी मात्र चेष्टा भगवान्‌को प्रसन्न करनेकी और भगवान्‌की मात्र चेष्टा श्रीजीको प्रसन्न करनेकी होती है। इसका नाम 'रासलीला' है। रास अर्थात् प्रेमके रसका समूह 'रासलीला' है। प्रेमका रस जितना ऊँचा है, उतना ज्ञानका रस ऊँचा नहीं है।

***   ***   ***

परमात्मा सब जगह समान रीतिसे परिपूर्ण हैं। ऐसे परिपूर्ण तत्त्वकी प्राप्ति क्रियासे नहीं होती—यह मार्मिक बात है! क्रिया उसके लिये होती है, जो वस्तु दूसरे देशमें हो। परमात्मा सर्वदेशमें सर्वथा परिपूर्ण है। अतः उसकी प्राप्तिमें क्रिया हेतु नहीं होती, प्रत्युत स्थिरता हेतु होती है। क्रिया और पदार्थ सांसारिक उन्नतिमें हेतु होते हैं। परन्तु पारमार्थिक उन्नतिमें क्रिया और पदार्थ बाधक होते हैं। क्रिया और पदार्थ आदि-अन्तवाले हैं। आदि-अन्तवाली वस्तु परमात्मप्राप्तिमें कारण कैसे बनेगी? **परमात्माकी प्राप्तिमें खास मार्मिक हेतु है—कुछ न करना। आप जहाँ हो, वहाँ ही चुप हो जाओ; क्योंकि वहाँ ही परमात्मा है। इसलिये परमात्मप्राप्तिके लिये जगह-जगह भटकनेकी जरूरत नहीं है।** परमात्मा सम्पूर्ण देश, काल, वस्तु, घटना, परिस्थिति, अवस्था आदिमें समान रूपसे परिपूर्ण है। उसकी प्राप्ति चुप होनेसे, कुछ भी चिन्तन न करनेसे होती है।

उत्तमा सहजावस्था मध्यमा ध्यानधारणा।
कनिष्ठा शास्त्रचिन्ता च तीर्थयात्राऽधमाऽधमा॥

अर्थात् तीर्थयात्रा अधम-से-अधम है। उससे ऊँचा शास्त्र-चिन्तन है। शास्त्र-चिन्तनसे ऊँची ध्यान-धारणा है; और सबसे ऊँची सहजावस्था है। सहजावस्थासे जो चीज मिलती है, वह ध्यान-धारणा, शास्त्र-चिन्तन और तीर्थयात्रासे नहीं मिलती। आप जहाँ ध्यान, धारणा, चिन्तन करते हैं, क्या वहाँ परमात्मा नहीं है? जहाँसे आपका चिन्तन शुरू होता है, क्या वहाँ परमात्मा नहीं है? कोई नहीं कह सकता कि वहाँ परमात्मा नहीं है। जो लोग सर्वथा बहिर्मुख हैं, उनके लिये तीर्थयात्रा मुख्य है; क्योंकि वे रात-दिन संसारमें ही लगे हुए हैं। अतः तीर्थोंमें मन्दिरोंका, सन्तोंका दर्शन करनेसे उनकी बुद्धि शुद्ध होगी। नामजप, कीर्तन, परोपकार, तीर्थयात्रा आदि सब उस स्थिति (स्थिरता)-के लिये है। जिनमें स्थिरताकी, चुप होनेकी योग्यता नहीं है, उनको ये साधन करके योग्यता प्राप्त करनी चाहिये। क्रियाके द्वारा शुद्धि होती है, परमात्मप्राप्तिकी योग्यता प्राप्त होती है। छतपर चढ़नेके लिये सीढ़ीकी आवश्यकता होती है, पर छतपर पहुँचनेके बाद सीढ़ीकी क्या जरूरत है?

अगर आप उस तत्त्वकी जल्दी प्राप्ति चाहते हैं तो शान्त हो जाइये। प्रत्येक क्रिया अक्रिया (स्थिरता)-से ही पैदा होती है और अक्रियामें ही समाप्त होती है। अतः **स्थिरता असली साधन है; क्योंकि स्थिर वस्तु ही वास्तवमें तत्त्व है।** पर इस तरफ बहुत-से भाई-बहनोंका ध्यान नहीं है। चिन्तन करते ही हम परमात्मासे दूर होते हैं, पर यह बात हरेकको कहनेकी नहीं है; क्योंकि इस बातको समझे बिना वह पहले ही परमात्मासे दूर हो जायगा! पहले यह दृढ़ निश्चय करे कि परमात्मा सर्वत्र परिपूर्ण

है, फिर चिन्तनका त्याग कर दे—**'आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्'** (गीता ६। २५)।

*** *** ***

मैंने एक पुस्तकमें पढ़ा है कि **अपने लिये तप करना भी भोग है और भगवान्‌के लिये झाड़ू लगाना भी योग है! कुछ भी चाहना भोग है, योग नहीं।** शरीर-मन-वाणीसे संयम करना त्रिलोकीकी सेवा है। वस्तुओंसे उपकार करना समाजकी सेवा है। समाजकी सेवा करके फल न चाहना अपनी सेवा है। **आप कुछ चाहेंगे तो आप तत्त्वसे अलग होंगे।** अतः कुछ न चाहना आपकी अपनी सेवा है। भगवान्‌को याद करना, उनका आश्रय लेना भगवान्‌की सेवा है। संसारकी सेवा, समाजकी सेवा, अपनी सेवा और भगवान्‌की सेवासे परमात्माकी प्राप्ति होती है।

*** *** ***

श्रोता—हमें मालूम है कि चाहनेमात्रसे कुछ नहीं होनेवाला है, फिर भी चाहना मिटती नहीं है। इसका क्या उपाय करें?

स्वामीजी—'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। **जो करना चाहते हैं, वह नहीं होता और जो नहीं करना चाहते हैं, वह हो जाता है—इन दोनों बातोंके लिये भगवान्‌से प्रार्थना करो 'हे नाथ! हे नाथ!'** प्रार्थना ऐसी करो कि रात-दिन भगवान्‌के पीछे ही पड़ जाओ! जैसे बालक लड्डू लेनेके लिये माँका पल्ला पकड़ लेता है और पीछे पड़ जाता है तो माँको तंग होकर देना ही पड़ता है कि 'ले, ले, मर!' बालक राजी हो जाता है। इसी तरहसे भगवान्‌के पीछे पड़ जाओ। यह बहुत बढ़िया उपाय है! साधनमें तरह-तरहकी बातें हैं, पर भगवान्‌का आश्रय लेकर पीछे पड़ जाना बहुत बढ़िया साधन है। यह मामूली नहीं है।

श्रोता—हम शरीरसे अलग हैं—इस बातका अनुभव कैसे हो?

स्वामीजी—आपका भक्तिका मार्ग है कि ज्ञानका मार्ग है? आपको कौन-सा मार्ग ठीक लगता है?

श्रोता—भक्तिमार्ग है।

स्वामीजी—भक्तिमार्गमें इसकी ज्यादा जरूरत नहीं है। शरीरसे अलगावका अनुभव हो जाय तो अच्छी बात है, नहीं तो आप भगवान्‌को 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारते रहो। परवाह मत करो। भगवान्‌की कृपासे सब ठीक हो जायगा। यह भक्तिकी विशेषता है।

ज्ञानमार्गमें अपनेको शरीरसे अलग अनुभव करना अत्यन्त आवश्यक है। भक्तिमार्गमें 'ममता' का त्याग और ज्ञानमार्गमें 'अहंता' का त्याग मुख्य है।

श्रोता—भगवान्‌में अटूट श्रद्धा और विश्वास कैसे जाग्रत् हो?

स्वामीजी—यह भी भगवान्‌से ही माँगो। चलते-फिरते, उठते-बैठते, खाते-पीते हरदम नामजप करो और प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'।

भक्तिमार्ग बहुत सुगम और श्रेष्ठ है। बहुत लोगोंकी यह धारणा है कि ज्ञानमार्ग ऊँचा है, भक्तिमार्ग नीचा है। वास्तवमें यह बात नहीं है। मेरेको भी यह बात देरीसे समझमें आयी! मैंने ज्ञानमार्गकी बातें सीखीं हैं, ज्ञानमार्गकी पढ़ाई की है और ज्ञानमार्गकी प्रधानता मेरेमें जँची हुई थी। भक्तिकी विशेषता जबर्दस्ती, बिना माँगे, बिना चाहे स्वतः आयी है! भक्तिकी बात विशेष है।

सबसे बड़े परमात्मा हैं, उनसे नीचे जीवात्मा है, और जीवात्मासे नीचे संसार है—यह क्रम

भगवान्‌ने गीताके सातवें अध्यायमें दिया है। ज्ञानमार्ग बीचका है। आरम्भमें योगमार्ग और अन्तमें भक्तिमार्ग है। गीताने भक्तिको मुख्य बताया है। वेदान्त **'अहं ब्रह्मास्मि'** को मुख्य मानता है, पर गीता **'वासुदेवः सर्वम्'** को मुख्य मानती है। इसलिये आप भक्तिमें लग जाओ और भगवान्‌को पुकारो। अहंकार टूट जाय तो बहुत अच्छी बात है, नहीं टूटे तो परवाह मत करो। भक्तका सब काम भगवान् करते हैं, और बहुत जल्दी करते हैं। भगवान्‌ने साफ कहा है—

तेषामहं समुद्धर्ता मृत्युसंसारसागरात्।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशितचेतसाम्॥

(गीता १२। ७)

'हे पार्थ! मुझमें आविष्ट चित्तवाले उन भक्तोंका मैं मृत्युरूप संसार-समुद्रसे शीघ्र ही उद्धार करनेवाला बन जाता हूँ।'

श्रोता—आपने कहा कि भक्तिमार्गमें यदि देहाभिमान बना भी रहे तो परवाह मत करो, पर देहाभिमानके रहते हुए भक्ति होगी ही कैसे?

स्वामीजी—पतिव्रता स्त्री क्या देहाभिमान छोड़ देती है? मन्दोदरी, तारा पतिव्रता थीं, क्या उनमें देहाभिमान नहीं था? भक्तिमें कैसा ही हो, 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। सदन कसाई होते हुए भी बड़े भक्त हो गये! बड़े-बड़े डाकू, पापी भी भगवान्‌के भक्त हो गये!

***   ***   ***

श्रोता—भगवान्‌को गुरु माननेके बाद क्या और किसीको गुरु बनानेकी आवश्यकता है?

स्वामीजी—बिलकुल नहीं है! गुरु बनाओगे तो एक नयी आफत हो जायगी! उनका कहना मानो तो मुश्किल, न मानो तो मुश्किल!

भगवान्‌के चरणोंका आश्रय लेकर साधनमें लग जाओ और हरदम भगवान्‌से कहते रहो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। अपना सम्बन्ध भगवान्‌के साथ रखो। अच्छे सन्त मिलें तो सत्संग कर लो, पर जहाँतक बने, किसीको गुरु मत बनाओ। किसीसे सम्बन्ध मत जोड़ो। गुरु बनानेका मेरा बिलकुल मत नहीं है, आगे आपकी मरजी। आप सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाओ। यह वहम निकाल दो कि किसीको गुरु बनायेंगे, तब कल्याण होगा।

साधकको चाहिये कि किसीके साथ सम्बन्ध न जोड़े। पहलेके जो सम्बन्ध हैं, वे भी टूटते नहीं, फिर नया सम्बन्ध क्यों जोड़ो? संसारका सम्बन्ध ही बाधक है—यह बड़ी दुर्लभ बात है! अपना सम्बन्ध केवल भगवान्‌के साथ ही रखो, जिनके आप अंश हो। आप मानो या न मानो, जानो या न जानो, बिलकुल भूल जाओ तो भी भगवान्‌के साथ आपका सम्बन्ध कभी टूटेगा नहीं। आप भगवान्‌के सम्बन्धको स्वीकार करोगे तो दुःख मिट जायगा। **मैंने जितनी पढ़ाई की है, पुस्तकें देखी हैं, विचार किया है, सबसे बढ़िया बात यह है कि हम भगवान्‌के हैं!** आप यह बात सदाके लिये मान लो कि मैं बिना मालिकका नहीं हूँ; मैं भगवान्‌का हूँ।

***   ***   ***

श्रोता—यह बात भी आती है कि भगवान्‌का स्मरण करनेमात्रसे कल्याण होता है, और यह बात भी आती है कि किसीका भी चिन्तन न करे, इसका तात्पर्य क्या हुआ?

स्वामीजी—पहले संसारका चिन्तन मिटानेके लिये भगवान्‌का चिन्तन करो। संसारका चिन्तन मिट जाय तो फिर कुछ भी चिन्तन मत करो—**'न किञ्चिदपि चिन्तयेत्'** (गीता ६। २५)। पहले निरन्तर

भगवान्‌का ही चिन्तन करो, पर कबतक? जबतक संसार याद आता है, तबतक। पहले काँटा निकालनेके लिये सुई लगाते हैं, पर जब काँटा निकल जाता है, तब सुई भी निकाल देते हैं। भगवान्‌का चिन्तन इसलिये करना है कि दूसरा चिन्तन न हो। दूसरा चिन्तन मिट जाय तो भगवान्‌का चिन्तन भी छूट जायगा। काँटा निकलनेपर क्या सुई लगाते हैं?

श्रोता—भगवान् कृष्णका ध्यान करें या भगवान् विष्णुका?

स्वामीजी—आपको जो बढ़िया लगे, जिसमें मन लगता हो, उसका ध्यान करो। कोई भी ध्यान छोटा-बड़ा नहीं है। जिसमें आपका मन लगे, उसमें मन लगा दो.....लगा दो.....लगा दो! जल्दी करो! शरीरका पता नहीं है!

*** *** ***

परमात्मा सबको स्वतः प्राप्त हैं। वे आपसे दूर नहीं हैं। आप जिसको 'मैं' कहते हो, उसके भी प्रकाशक, संजीवक, संचालक, दृष्टा, ज्ञाता परमात्मा हैं। वे परमात्मा सबमें होनेके कारण आपमें भी हैं और सब समयमें होनेके कारण अभी हैं। **परमात्मा इतने नजदीक हैं कि उनसे नजदीक दूसरा कोई है ही नहीं।** केवल आपकी दृष्टि संसारकी तरफ है। केवल दृष्टिको घुमाना है। जीवात्मा भी वास्तवमें परमात्माको ही चाहता है। परन्तु भ्रममें पड़नेके कारण इसने जहाँ परमात्माकी लालसा है, वहाँ संसारकी इच्छा कर ली। संसारकी इच्छामें दो इच्छाएँ खास हैं—क्रियाकी इच्छा और पदार्थकी इच्छा अर्थात् करनेकी इच्छा और पानेकी इच्छा। करना और पाना—ये दोनों प्रकृतिके कार्य हैं। इनसे ऊँचा उठनेपर परमात्माकी प्राप्ति होती है।

आप परमात्माको अपने साथ मानो कि परमात्मा हमारे भीतर हैं और हम परमात्मामें हैं। कबीर साहब कहते हैं—

पाणी में मीन पियासी रे, मोहि देखत आवै हाँसी रे॥
जल बिच मीन, मीन बिच जल है, निस दिन रहत पियासी रे॥

परमात्मरूपी जलकी तरफ हमारी दृष्टि नहीं है, इसलिये हम प्यासे हैं! अगर आप हिम्मत करके केवल परमात्माकी लालसा जाग्रत् कर लें, तो आपकी प्यास सदाके लिये मिट जाय, आप निहाल हो जायँ! जैसे बालक अपनी माँको पुकारता है, ऐसे हरदम 'हे नाथ! हे मेरे नाथ! हे मेरे प्रभो!' पुकारो। एक परमात्माके बिना आपको शान्ति मिल नहीं सकती। **संसार दुःखालय है। इसमें आप अरबों वर्षोंतक मेहनत करो तो भी कभी शान्ति मिलनेवाली है नहीं!** जो चीज संसारमें है ही नहीं, वह मिलेगी कैसे?

परमात्माकी प्राप्ति अन्तिम प्राप्ति है। उसको प्राप्त करनेवालेमें किंचिन्मात्र भी कमी नहीं रहती। इतना ही नहीं, उसका संग करनेवालेमें भी कमी नहीं रहती!

कुछ दिनोंसे मेरे मनमें यह बात ज्यादा आ रही है कि एक परमात्माके सिवाय आप किसीसे सम्बन्ध मत जोड़ो। सम्बन्ध जोड़ना बड़ी भारी भूल है! सम्बन्ध जोड़ोगे तो आप फँस जाओगे। फिर निकलना मुश्किल है! इसलिये सेवा करो, सुख-आराम पहुँचाओ, पर अपना सम्बन्ध मत जोड़ो। संसारसे सम्बन्ध तोड़ते ही परमात्मासे अपने-आप जुड़ जाओगे, जो कि वास्तवमें पहलेसे है। संसारका सम्बन्ध न तो पकड़ते बनता है, न छोड़ते ही बनता है। पकड़ सकते नहीं, छूटता है नहीं! पहलेसे ही सावधान रहो। जो मिलती है और बिछुड़ जाती है, वह चीज अपनी नहीं होती, यह कसौटी है।

*** *** ***

आध्यात्मिक मार्गमें चलनेवालोंको सांसारिक सुखका त्याग करनेकी बात सौ प्रतिशत, पूरी-की-पूरी माननी पड़ेगी। ऐसी ढिलाई नहीं चलेगी कि संसारका सुख भी भोग लें और परमात्माकी प्राप्ति भी कर लें। इस विषयमें साधकको पक्का रहना पड़ेगा। जितने भी सांसारिक भोग हैं, वे सब दुःखोंके कारण, उत्पत्ति-स्थान हैं—'**ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते**' (गीता ५। २२)। भोगोंका सर्वथा त्याग कर दिया जाय तो कोई दुःख नजदीक नहीं आयेगा। सांसारिक भोग भोगोगे तो दुःख नहीं आये—यह हाथकी बात नहीं है। वह तो आयेगा ही। इसलिये अगर आप शान्ति चाहते हो तो सांसारिक सुख मत चाहो। सुखकी लोलुपता रहते हुए इस जन्ममें उद्धार हो जाय—यह सम्भावना नहीं है। जब कभी आनन्द मिलेगा, सांसारिक सुखोंके त्यागसे ही मिलेगा। **सांसारिक सुखका त्याग करनेमें दीखता तो सुखका त्याग है, पर होगा दुःखका त्याग!**

हरदम 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारते रहो और निरन्तर मनमें यह विचार रखो कि हम सनाथ हैं, अनाथ नहीं हैं। हमारे मालिक प्रभु हैं। फिर सब ठीक हो जायगा! अपनी ताकतसे यह नहीं होगा!

परमात्माकी प्राप्ति चाहनेवाले भाई और बहनोंको 'हमें सांसारिक सुख नहीं लेना है' ऐसा विचार पहले कर लेना चाहिये, तभी आध्यात्मिक उन्नति होगी। परमात्मप्राप्ति सुगम तब होगी, जब आपकी लालसा परमात्मप्राप्तिकी हो जायगी और भोगोंकी इच्छा छूट जायगी। अपनी माँकी गोदीमें जानेमें बालकको क्या परिश्रम होता है? क्या कठिनता होती है? पर जब खेल-कूदमें रस आता है, तब वह माँको भूल जाता है। माँ भोजन करनेके लिये बुलाती है तो जल्दी आता नहीं। इसलिये पहले ही आप सुख छोड़नेके लिये कमर कसकर तैयार हो जाओ, फिर रास्ता बड़ा सुगम हो जायगा।

*** *** ***

श्रोता—आपकी 'क्या गुरु बिना मुक्ति नहीं' पुस्तक पढ़ी। उसमें आया है कि जो साधु अपनी पूजा करवाता है, वह पाखण्डी है। हमारे गुरुजी पैसा भी नहीं लेते ओर चेला भी नहीं बनाते, पर उनकी दोनों समय आरती उतरती है, तो क्या उनको पाखण्डी समझना चाहिये?

स्वामीजी—वे पाखण्डी नहीं हैं, पर उनकी पारमार्थिक रुचिमें कमी है। **जिनकी पारमार्थिक रुचि होती है, वे अपनी पूजा-आरती नहीं करवाते, अपना आदर नहीं करवाते।** उनको पारमार्थिक उन्नतिमें देरी लगेगी। पाखण्डी वे होते हैं, जिनकी लोगोंको ठगनेकी नीयत होती है। जो चेला-चेली बनाकर किसी तरहसे अपना काम सिद्ध कर ले, वह पाखण्डी होता है। परन्तु आपके गुरुजी सुख-आराम, मान-बड़ाई नहीं चाहते, पर आरती कराते हैं तो यह थोड़ी-सी कमी है। वे दूसरोंका आदर इसलिये सह लेते हैं कि इससे दूसरोंको प्रसन्नता मिलती है। पर यह दया कामकी नहीं है। इससे हित नहीं होगा।

श्रोता—साधु-संन्यासीलोग सांसारिक सुखका त्याग करके सत्संग करते हैं, फिर उनको भगवत्प्राप्तिमें देरी क्यों हो रही है?

स्वामीजी—सुखकी इच्छाके कारण! मैं तो अपनी बात कह सकता हूँ कि जितनी सुखकी इच्छा रहती है, उतनी पारमार्थिक उन्नतिमें बाधा होती है, यह हमारी भोगी हुई है! मनुष्य जल्दी निर्णय नहीं कर सकता कि इसका त्याग कैसे करें? यह मेरी बीती हुई बात है! भजन करते-करते अचानक भगवान्की विलक्षण कृपा होती है और उसका त्याग हो जाता है।

श्रोता—हमें क्या साधन करना चाहिये, जिससे हमारा उद्धार हो जाय?

स्वामीजी—भगवान्‌को याद करो। **मेरेको तो यह बात बहुत बढ़िया लगी है कि 'हे नाथ! हे प्रभो! हे मेरे स्वामी! मैं आपको भूलूँ नहीं'—ऐसे रात और दिन कहते ही रहो.....कहते ही रहो..... कहते ही रहो! लाभ जरूर होगा, इसमें सन्देह नहीं है।** कब होगा, कैसे होगा, इसका पता नहीं है। समय चाहे दस-बीस-पचास वर्ष लग जाय, पर फायदा होगा, इसमें सन्देह नहीं है। भगवान्‌की अलौकिक, विचित्र कृपा होती है, और विचित्र काम करती है। अगर हमारी प्रार्थना रोकर, हृदयसे होगी तो वह एक दिन भी अपनी उम्रमें विलक्षण दीखेगा!

*** *** ***

यह बात सब जानते हैं कि परमात्मा सब जगह परिपूर्ण हैं। हमें बचपनकी सुनी हुई बात याद है कि भगवान्‌के बिना सूईकी नोक-जितनी जगह भी खाली नहीं है। भगवान् गीतामें कहते हैं—**'समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः'** (गीता ९। २९) अर्थात् मैं सबमें समान रूपसे व्यापक हूँ, समान ही दयालु हूँ, समान ही सबका भरण-पोषण करता हूँ; मेरे मनमें किसीके भी प्रति न राग है, न द्वेष है; न कोई प्यारा है, न वैरी है। अगर हम इस बातको मान लें कि भगवान् सब जगह हैं तो फिर हम कोई भी पाप, नीचा काम नहीं कर सकते। कारण कि भगवान्‌के सब जगह ही हाथ हैं, सब जगह ही पैर हैं, सब जगह ही आँख है, सब जगह ही सिर हैं, सब जगह ही मुख हैं—

सर्वतःपाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम्।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति॥

(गीता १३। १३)

'वे परमात्मा सब जगह हाथों और पैरोंवाले, सब जगह नेत्रों, सिरों और मुखोंवाले तथा सब जगह कानोंवाले हैं। वे संसारमें सबको व्याप्त करके स्थित हैं।'

हम बोलते हैं तो भगवान्‌के कानमें ही बोलते हैं। हम काम करते हैं तो भगवान्‌की आँखके सामने ही करते हैं। हमारे मनमें कोई बात आये तो उसको भी भगवान् जानते हैं। हमारी कोई भी चेष्टा भगवान्‌से छिपकर नहीं होती। हम निरन्तर भगवान्‌के सामने ही रहते हैं। अगर यह बात हम याद रखें तो हमारा आचरण बिलकुल शुद्ध, निर्मल हो जाय। जैसे स्याहीमें सब लिपियाँ रहती हैं, सोनेमें सब गहने रहते हैं, ऐसे ही भगवान्‌में सब चीजें हर समय मौजूद रहती हैं। जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति, मूर्च्छा, समाधि—ये सब अवस्थाएँ भगवान्‌के सामने रहती हैं।

तुलसी सीतानाथ ते मत कर कपट सनेह।
क्या परदा भर्तार सों जिन्ह देखी सब देह॥

जिसने सब कुछ देखा है, उससे परदा कैसा? इसलिये याद रखो कि हमारी कोई भी बात भगवान्‌से छिपी हुई नहीं है। अगर हम यह बात याद रखें कि भगवान् हमारी हरेक क्रिया ठीक तरहसे देखते हैं तो फिर हमारेसे पाप-क्रिया नहीं होगी। हम हरेक नीचा काम इसलिये नहीं करते कि लोग देख लेंगे। लोग क्या देखें, भगवान् ही देख रहे हैं! सब कुछ जानते हुए भी भगवान् कितने क्षमाशील हैं! उनके समान क्षमाशील कोई मिलेगा नहीं। ऐसे भगवान् हमारे अपने हैं!

*** *** ***

अर्जुनने कौरवोंको बुरा समझकर युद्ध नहीं किया है, प्रत्युत युद्धका अवसर प्राप्त होनेपर अपना

कर्तव्य (क्षात्रधर्म) समझकर युद्ध किया है। पाप राग-द्वेषसे लगता है। भगवान्‌ने कहा है—

सुखदुःखे समे कृत्वा लाभालाभौ जयाजयौ।
ततो युद्धाय युज्यस्व नैवं पापमवाप्स्यसि॥

(गीता २। ३८)

'जय-पराजय, लाभ-हानि और सुख-दुःखको समान करके फिर युद्धमें लग जा। इस प्रकार युद्ध करनेसे तू पापको प्राप्त नहीं होगा।'

जय-पराजय आदिको समान करके युद्ध करनेके कारण अर्जुन पापका भागी नहीं हुआ। आरम्भमें तो अर्जुनने साफ कहा कि मैं युद्ध नहीं करूँगा—'**न योत्स्ये**' (गीता २। ९), पर अन्तमें यह नहीं कहा कि मैं युद्ध करूँगा, प्रत्युत यह कहा कि मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा—'**करिष्ये वचनं तव**' (गीता १८। ७३)। अतः अर्जुनने भगवान्‌की आज्ञासे युद्ध किया है, वैरसे युद्ध नहीं किया है। अर्जुनने तो आततायीको भी नहीं मारनेकी बात कही है (गीता १। ३६)। इसलिये अर्जुनने राग-द्वेषकी दृष्टिसे युद्ध नहीं किया है, प्रत्युत कर्तव्यकी दृष्टिसे युद्ध किया है।

युद्ध करनेके लिये भगवान् श्रीकृष्ण, द्रोणाचार्य, भीष्म आदि सबने निषेध किया, पर दुर्योधन नहीं माना, इसलिये युद्ध हुआ। दुर्योधनने साफ कह दिया कि तीखी सूईकी नोक-जितनी जमीन भी मैं बिना युद्धके नहीं दूँगा। युद्धकी तैयारी दुर्योधनने की थी, अर्जुनने नहीं, तभी कहा—'**यदृच्छया चोपपन्नम्**' (गीता १५। ७) अर्थात् युद्ध अपने-आप सामने आया है। जब युद्ध सामने आ गया, तब युद्ध करना कर्तव्य हो गया। भगवान्‌ने भी कर्तव्यका पालन करनेकी आज्ञा दी है, युद्ध करनेकी नहीं।

हरेक भाई-बहनको अपने-अपने कर्तव्यका पालन करना चाहिये। गीता कहती है—'**स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः**' (गीता १८। ४५) अर्थात् अपने-अपने कर्तव्यका पालन करनेसे मनुष्य परमात्माको प्राप्त कर लेता है।

श्रोता—अपने धर्मका पालन करनेके लिये ही गीता कही गयी, पर अन्तमें धर्मका त्याग करनेकी बात आयी—'**सर्वधर्मान्परित्यज्य**' (गीता १८। ६६)। इसकी संगति कैसे बैठेगी?

स्वामीजी—अगर अर्जुन युद्ध नहीं करता तो धर्मका त्याग होता, पर गीता सुननेके बाद अर्जुनने युद्ध किया है। इसलिये वहाँ स्वरूपसे धर्मका त्याग करनेकी आज्ञा नहीं है, प्रत्युत धर्मके आश्रयका त्याग करनेकी बात है। धर्मके कारण मेरा कल्याण हो जायगा—इस तरह धर्मका आश्रय न लेकर भगवान्‌का आश्रय लेना चाहिये—'**मामेकं शरणं व्रज** (गीता १८। ६६)। इसलिये अर्जुनने 'मैं युद्ध करूँगा' ऐसा न कहकर यह कहा कि 'मैं आपकी आज्ञाका पालन करूँगा'। भगवान् तथा उनके भक्तकी आज्ञाका पालन करनेको 'परमधर्म' कहा गया है—

सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धरमु यहु नाथ हमारा॥

(मानस, बाल० ७७। १; अयोध्या० २१३। २)

*** *** ***

श्रोता—हम भजन-ध्यान करते हैं तो भगवान्‌में मन नहीं लगता। मन कैसे लगे?

स्वामीजी—भगवान्‌से कहो। बहुत बढ़िया बात है कि हरदम भगवान्‌से कहो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। आठों पहर लगन लगा दो कि 'हे नाथ! ऐसी कृपा करो कि मैं आपको भूलूँ नहीं'। हरदम यह कहते रहोगे तो भगवान्‌को भूलोगे कैसे? 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'—इसीमें

भगवान्‌की याद पड़ी है!

श्रोता—किसी व्यक्तिको मैं दु:ख देना नहीं चाहता, फिर भी उसको दु:ख होता है तो मैं क्या करूँ?

स्वामीजी—उससे माफी माँगो कि हमारा कोई कसूर हो तो माफ करो। बताओ कि हमारा क्या कसूर है, फिर वह नहीं करूँगा। वह माफी भी न दे तो परवाह मत करो। आप अपनी तरफसे माफी माँगकर हृदय साफ रखो। फिर वह भले ही नाराज हो जाय, कोई परवाह नहीं।

*** *** ***

जैसे बालक मिट्टीका घर बनाकर खेलते हैं, ऐसे ही लोग अपना-अपना घर बनाकर खेल रहे हैं, राजी हो रहे हैं! यह नहीं सोचते कि यह घर कितने दिन रहनेवाला है? हमारा इसमें कितने दिन रहना होगा? रह सकोगे नहीं! यह याद ही नहीं कि हम किस घरके हैं। जैसे मुसाफिर रातमें धर्मशालामें ठहरता है, आराम करता है, पर मनमें यह बात बनी रहती है कि यह हमारा घर नहीं है, ऐसे आपको भी याद रहना चाहिये कि यह अपना घर नहीं है, अपना स्थान नहीं है, अपना मुहल्ला नहीं है, अपना देश नहीं है। यहाँ चाहकर भी रह सकोगे नहीं, इसलिये आगे अपनी जगह बना लो। जहाँ जानेके बाद फिर लौटना नहीं पड़ता, वही अपना असली घर है। जबतक अपना घर नहीं आयेगा, तबतक लौटना ही पड़ेगा। कहीं भी ठहर सकोगे नहीं।

कोई आज गया कोई काल गया,
कोई जावनहार तैयार खड़ा।
नहीं कायम कोई मुकाम यहाँ,
चिरकाल से यही रिवाज रही॥

याद करो कि आप किस घरानेके हो। आप मामूली, साधारण नहीं हो, प्रत्युत साक्षात् परमात्माके अंश हो। वे परमात्मा अपने हैं। उस परमात्माको याद करो और 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। **जब अपना सच्चा घर मौजूद है, तो फिर उसके रहते हम दु:ख क्यों पायें? उस घरका दरवाजा सबके लिये हर समय खुला है!** अभी आप पराये लोकमें बैठे हो। जब पराये लोकमें भी आपका काम चलता है, तो फिर अपने लोकमें, अपने घरमें कितना आनन्द होगा! सदाके लिये निश्चिन्त, निर्भय हो जाओगे!

*** *** ***

श्रोता—आपको आध्यात्मिक लाभ किस चीजसे ज्यादा हुआ?

स्वामीजी—सत्संगसे।

श्रोता—सत्संगका स्वरूप क्या है?

स्वामीजी—सत्‌के साथ संग अर्थात् प्रेम। जो अविनाशी है, वह सत् है। जिन बातोंसे, जिन विचारोंसे हमारा सत्‌के साथ संग हो जाय, वह सत्संग है।

हमारे तो मनमें ऐसी आती है कि परमात्माके पीछे पड़ जाओ! वे हमारे परमपिता हैं। उनके सिवाय और कोई अपना नहीं है। सेवा सबकी करो, पर अपना किसीको मत मानो। किसीसे भी सम्बन्ध मत जोड़ो। एक भगवान् और एक भगवान्‌के प्यारे भक्त—इन दोके द्वारा हमारा भला होगा। स्वार्थी आदमीसे आपका भला नहीं होगा। **जो आपसे कुछ भी चाहता है, वह आपको कुछ नहीं दे सकता।**

***   ***   ***

श्रोता—विचारसे यह बात समझमें आती है कि भगवान्‌का भजन करना चाहिये, उनकी प्राप्ति करनी चाहिये, फिर भी कुछ ऐसे संस्कार मालूम देते हैं, जो हमें भोगोंकी तरफ खींचते हैं! उनको कैसे मिटायें?

स्वामीजी—संसारके जो भोग मन लगाकर, तल्लीन होकर भोगे हैं, उनके संस्कार भीतर पड़े हुए हैं। विरोध करनेसे वे नहीं मिटेंगे। उनकी उपेक्षा करो। उनसे उदासीन, तटस्थ रहो। **वास्तवमें असत्‌के संस्कार भी असत् होते हैं। उनको विशेष आदर मत दो। उनकी परवाह मत करो। विरोध करनेसे वे अधिक दृढ़ होते हैं।** कारण कि आपने पहले उनको दृढ़ माना, तब उनका विरोध किया। इसलिये आप करते तो हो विरोध, पर होती है उनकी मजबूती! अतः उनको मिटानेका उपाय विरोध नहीं, उपेक्षा है।

अगर आप समझो तो एक और मार्मिक बात है! गीतामें भगवान्‌ने कहा है—**'नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः'** (गीता २। १६) अर्थात् असत्‌की तो सत्ता विद्यमान नहीं है और सत्‌का अभाव विद्यमान नहीं है। फिर 'सत्' का विवेचन करते हुए कहा—**'अविनाशि तु तद्विद्धि येन सर्वमिदं ततम्'** (गीता २। १७) 'अविनाशी तो उसको जान, जिससे यह सम्पूर्ण संसार व्याप्त है' और **'नित्यः सर्वगतः'** (गीता २। २४) 'यह शरीरी नित्य रहनेवाला तथा सबमें परिपूर्ण है'। अतः आपका स्वरूप शरीरमें नहीं है। स्वरूप सर्वव्यापक है। यह बात बहुत दामी है! अतः मैं उस जगह हूँ—ऐसा मत मानो। मैं तो सब जगह हूँ—ऐसा मान लो तो बहुत सुगमता हो जायगी। जो सर्वव्यापक है, वह एक शरीरमें नहीं है। अतः मैं एक शरीरमें नहीं हूँ—ऐसा दृढ़तासे मान लो। विशेष लाभ होगा!

श्रोता—यह बात सबके समझमें नहीं आयी, खुलासा करें।

स्वामीजी—हम अपने अन्तःकरणको शुद्ध, निर्मल करना चाहते हैं, पर वह शुद्ध होता नहीं! हमारे भीतर काम, क्रोध, लोभ, मोह आदिके जो संस्कार पड़े हुए हैं, उनको हम मिटाना चाहते हैं, पर वे मिटते नहीं! यह प्रश्न है। इसके उत्तरमें मैंने कहा कि हम उन संस्कारोंको ज्यों मिटाना चाहते हैं, त्यों वे दृढ़ होते हैं। इसलिये उनकी उपेक्षा करें, विरोध न करें। विरोध करेंगे तो वर्ष लग जायँगे, पर वे मिटेंगे नहीं। उनको फालतू समझकर उनकी बेपरवाह करें कि संस्कार दीखते हैं, पर हैं नहीं।

आपका स्वरूप सब जगह व्याप्त है, केवल एक शरीरमें (एकदेशीय) नहीं है। **संस्कार तो शरीरमें हैं, पर आपका स्वरूप शरीरमें नहीं है। आप शरीरसे अलग होकर देखो तो आपमें संस्कार हैं ही नहीं।** संस्कार अपनेमें हैं ही नहीं तो फिर क्यों घबरायें! असत्‌का संस्कार भी असत् है। अतः मनमें कोई बात आये तो अपने-आपको सब जगह अनुभव करें। इससे वह संस्कार बहुत सरलतासे दूर हो जायगा।

शरीरकी संसारके साथ एकता है और हमारी परमात्माके साथ एकता है। **जो संसारसे सुख लेना चाहता है, वह अपनी स्थिति एक शरीरमें दृढ़ करता है; क्योंकि सुखका भोग एक शरीरमें होता है।** एक शरीरमें ही स्वरूप कर्ता-भोक्ता बनता है।

आपका मूल्य संसारसे अधिक है। संसार छोटा है, आप बड़े हैं! आपका स्वरूप अनन्त ब्रह्माण्डोंसे बड़ा है! अनन्त ब्रह्माण्ड आपके एक देशमें हैं! जैसे, हमारी आँख छोटी-सी दीखती है, पर हमें जो कुछ दीखता है, वह सब हमारी आँखके अन्तर्गत आ जाता है। फिर भी आँख भरती नहीं,

उसमें जगह खाली रहती है! ऐसा नहीं होता कि आँख तो भर गयी, अब और क्या देखें? आप कितनी विद्याएँ सीखते हो, फिर भी बुद्धि भरती नहीं। चारों युगोंकी सब-की-सब सृष्टि आपकी समझमें (बुद्धिके अन्तर्गत) आती है। एक हजार चतुर्युगीका ब्रह्माका दिन और उतनी ही बड़ी ब्रह्माकी रात होती है। इस हिसाबसे ब्रह्माकी सौ वर्षकी आयु होती है। ऐसे सैकड़ों-हजारों ब्रह्मा उत्पन्न होकर चले गये, यह भी आपकी समझमें आता है। भूत-भविष्य-वर्तमान तीनों काल भी आपकी समझमें आते हैं। फिर भी बुद्धि ज्यों-की-त्यों खाली रहती है! पृथ्वीपर दो सौ देश हैं। वे देश भी आपकी समझमें आते हैं। ऐसी पृथ्वी भी अनन्त है, ब्रह्माण्ड भी अनन्त हैं। वे सब-के-सब बुद्धिके अन्तर्गत आते हैं। फिर भी बुद्धि खाली रहती है। अत: आपकी बुद्धि कितनी बड़ी हुई! वह बुद्धि आपकी है या आप बुद्धिके हो? बुद्धि आपकी है तो आप बुद्धिसे भी बड़े हुए! विचार करें, आपका स्वरूप कितना बड़ा हुआ! उस स्वरूपमें संस्कार कहाँ है? है ही नहीं। सम्पूर्ण संसार एक देशमें हैं, पर आप देश और कालसे अतीत हो।

आपका स्वरूप परमात्माका अंश है। परमात्मा सबसे बड़े हैं। वे आपकी बुद्धिके अन्तर्गत नहीं आते। इसलिये आप परमात्माको मान सकते हैं, जान नहीं सकते।

आपकी मुक्ति होती नहीं है, प्रत्युत मुक्ति है। उस मुक्तिको पहचानना है। जैसे, हमने स्वप्नमें देखा कि एक बूढ़ा आदमी गायको लेकर लाया। गायने एक बछड़ेको जन्म दिया। तो साठ वर्षका आदमी, आठ वर्षकी गाय और दो दिनका बछड़ा—तीनों एक साथ पैदा हुए! ऐसे ही यह सब संसार है! जैसे स्वप्न हमारे अन्तर्गत था, ऐसे ही संसार हमारे अन्तर्गत है। आँख खुलते ही सब स्वप्न गायब! अत: आप सब मुक्त हैं, कोई बन्धनमें नहीं है। केवल इस बातकी तरफ ख्याल करना है।

***　　　***　　　***

श्रोता—नामजप करना चाहते हैं, पर मन भाग जाता है, क्या करें?

स्वामीजी—आप नामजप करो, फिर मन ठीक हो जायगा। पहले मन ठीक हो जाय, फिर नामजप करें—ऐसा कभी नहीं होगा।

आपको विचार करना चाहिये कि अपना कल्याण कैसे हो? **आपने बहुत बातें सीख लीं, पर कल्याण नहीं हुआ तो क्या फायदा? और कल्याण हो जाय तो बहुत-सी बातें नहीं जाननेसे नुकसान क्या हुआ?** सबसे पहले यह समझना है कि जड़ क्या है और चेतन क्या है? जड़ताका बिलकुल त्याग करना है और चेतनताको ग्रहण करना है—यह खास बात है। स्थूल, सूक्ष्म और कारण—तीनों शरीर जड़ हैं, और आप परमात्माके अंश हो। आपका सम्बन्ध परमात्माके साथ है। अनन्त ब्रह्माण्ड प्रकृतिका कार्य (जड़) होनेसे त्याज्य हैं।

प्राय: सब लोग जड़के द्वारा चेतनकी प्राप्ति करना चाहते हैं! परन्तु जड़के द्वारा चेतनकी प्राप्ति होती ही नहीं—यह बात मैं कई वर्षोंसे कह रहा हूँ। चेतनकी प्राप्ति जड़के त्यागसे होती है। चढ़नेके लिये सीढ़ी कामकी है, पर छतमें जानेके लिये सीढ़ीका त्याग करना ही पड़ेगा। जड़का सदुपयोग करना है। जड़ आपके कामका नहीं है, उसका सदुपयोग आपके कामका है। जड़के द्वारा जड़से ऊँचा उठ सकते हो, पर चिन्मयतामें स्थिति जड़का त्याग करनेसे ही होगी, जड़को पकड़े रहनेसे नहीं होगी। तत्त्वकी प्राप्तिमें विवेक काम आयेगा। वह विवेक मनुष्यशरीरमें है। मनुष्यशरीरकी महिमा भी विवेकको लेकर ही है।

मैं मनुष्यमात्रको परमात्मप्राप्तिका अधिकारी मानता हूँ। जो अनपढ़ है, एक अक्षर भी नहीं जानता, उसको भी तत्त्वज्ञान हो सकता है, परमात्मप्राप्ति हो सकती है। कारण कि स्वरूपसे सब परमात्माके अंश हैं। जड़की तरफ अर्थात् भोग और संग्रहकी तरफ आकर्षण होनेके कारण ही चिन्मय स्वरूपका अनुभव नहीं हो रहा है।

*** *** ***

गीताके अनुसार समताका नाम 'योग' है—'**सिद्ध्यसिद्ध्योः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते**' (गीता २। ४८)। सिद्धिमें जो प्रसन्नता होती है, वही प्रसन्नता असिद्धिमें भी होने लग जाय तो आप योगी हो जाओगे। आपकी मनचाही बात हो जाय और आपकी मनचाहीसे विरुद्ध बात हो जाय—दोनोंमें आप अपने अन्तःकरणको देखो तो अपनी स्थितिका पता लगेगा। एक पत्थरकी लकीर होती है, एक बालूकी लकीर होती है, एक जलकी लकीर होती है और एक आकाशकी लकीर होती है। पत्थरकी लकीर मिटती नहीं, बालूकी लकीर थोड़ी देरमें मिट जाती है, जलकी लकीर साथ-साथ मिटती जाती है और आकाशमें लकीर खिंचती ही नहीं। आप देखो कि आपके भीतर काम-क्रोधादि विकार किस लकीरकी तरह असर डालते हैं। **जबतक मनमें विकार आकाशकी लकीरकी तरह न हो जाय, तबतक साधकको अपने साधनमें भूलकर भी सन्तोष नहीं करना चाहिये। जबतक अन्तःकरणमें थोड़ा भी विकार है, तबतक भले ही कितनी ज्ञानकी बातें कर लो, तत्त्वज्ञान नहीं हुआ। जबतक मैं-पन है, तबतक बोध नहीं है।**

जहाँ प्रेम होता है, वहाँ कामना नहीं होती। जहाँ कामना होती है, वहाँ प्रेम नहीं होता। जो आपसे कुछ भी लेना चाहता है, वह आपसे प्रेम नहीं कर सकता, और सेवा भी नहीं कर सकता।

*** *** ***

आपमें यह विचार आना चाहिये कि सत्संग करते कितने वर्ष हो गये, अभीतक बोध नहीं हुआ! **यह कायदा है कि साधकको साध्यकी प्राप्ति तत्काल होनी चाहिये। साध्यके बिना साधक नहीं रह सकता और साधकके बिना साध्य नहीं रह सकता। फिर देरी क्यों?** भोजनके बिना भूखा कैसे रह सकता है? भोजन करनेवाला न हो तो भोजन भी क्या कामका? मैं साधक हूँ तो साध्यके बिना कैसे रह सकता हूँ? साधक होता है मनुष्य और साध्य होता है परमात्मा। साध्यकी प्राप्तिमें देरीका कारण साधककी ढिलाई है, नहीं तो देरी नहीं होनी चाहिये। उत्कट अभिलाषा हो जाय तो साध्यकी प्राप्ति जरूर हो जायगी।

जब आप साधक हो गये तो फिर साध्यकी प्राप्तिके बिना आपको चैन कैसे पड़ रहा है? केवल बेचैनी होनी चाहिये, और किसीकी आवश्यकता नहीं है। आपको साध्यकी प्राप्ति हो जायगी; क्योंकि साध्य सबमें स्वतः परिपूर्ण है। **आप जहाँ है, वहीं साध्य है, फिर कैसे प्राप्त नहीं होगा!** पर आपको साध्यकी परवाह ही नहीं है! उसकी जोरदार इच्छा ही नहीं है! केवल साध्यकी इच्छा होनी चाहिये, फिर उसकी प्राप्ति हो जायगी।

साध्यकी प्राप्तिमें साधक स्वतन्त्र है। **साध्यकी प्राप्ति नहीं होती तो साधकपनेमें ही कमी है। मनमें विचार कर रखा है कि ऐसे जल्दी परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती। अरे, परमात्माकी प्राप्ति जल्दी नहीं होगी तो जल्दी क्या होगा? अन्य कोई जल्दी होनेवाली चीज है ही नहीं!** आप अपनेको जहाँ मानते हो, उसी जगह पूर्ण परमात्मा हैं। वह साध्य है ही नहीं, जो साधकको न मिले। साध्य साधकको नहीं मिलेगा तो किसको मिलेगा? साध्यके ऊपर साधकका पूरा अधिकार है। आप परमात्माके बेटे हो। बाप अगर बेटेसे नहीं मिलेगा तो किससे मिलेगा? जो चीज केवल इच्छासे मिलती है, उसके

बिना हम क्यों रहें? परन्तु आप धन चाहते हो, भोग चाहते हो तो मौज करो, परमात्माकी प्राप्ति नहीं होगी!

चाह चूहड़ी रामदास, सब नीचों में नीच।
तू तो केवल ब्रह्म था, चाह न होती बीच॥

धन आदिकी चाहना करोगे तो केवल परमात्मप्राप्तिमें बाधाके सिवाय और कुछ नहीं होगा! **चाहना करनेसे धन तो मिलेगा नहीं, पर परमात्मप्राप्तिमें बाधा लग जायगी!** जैसे काँटेको निकालनेके लिये लोहेके काँटेकी जरूरत पड़ती है, ऐसे ही सांसारिक इच्छाओंको मिटानेके लिये परमात्माकी इच्छा करनेकी जरूरत है, नहीं तो परमात्माकी इच्छा करनेकी भी जरूरत नहीं। संसारकी कितनी ही इच्छा करो, वह तो एक दिन छूटेगा ही—***'अंतहु तोहिं तजैंगे पामर तू न तजै अबही ते'*** (विनयपत्रिका १९८)। परन्तु परमात्मा बिना चाहे भी छोड़ेंगे नहीं, छोड़ सकते ही नहीं। जो सर्वव्यापक है, वह आपको कैसे छोड़ेगा? भगवान्‌की जरूरत ही इसलिये है कि हमें सदा अपने साथ रहनेवाला साथी चाहिये। इसलिये भगवान्‌को जोरसे 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। भगवान्‌को पुकारनेसे आपके सब बन्धन टूट जायँगे! देरी केवल आपकी तरफसे है, भगवान्‌की तरफसे नहीं।

***　　　　***　　　　***

श्रोता—कुसंगसे कैसे बचें?

स्वामीजी—सत्संग करो, कुसंग मत करो। हरदम सावधान रहो। जैसे सत्संगसे लाभ होता है, ऐसे ही कुसंगसे हानि होती है। नारदभक्तिसूत्रमें लिखा है—**'तरङ्गायिता अपीमे सङ्गात्समुद्रायन्ति'** (४५) अर्थात् तरंगकी तरह रहनेवाला छोटा-सा विकार भी कुसंग करनेसे समुद्रकी तरह विशाल हो जाता है! इसलिये आप पहले ही भगवान्‌के हो जाओ, फिर भजन करो—***'होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु'*** (दोहावली २२)। अच्छी पुस्तकें पढ़ो; क्योंकि पुस्तकोंका भी कुसंग होता है। उपन्यास आदिका, अखबारोंका संग भी कुसंग है। खराब पुस्तकोंका संग भी कुसंग है। भीतरके खराब भावोंको दूर करो। रोजाना समय निकालकर घण्टा-डेढ़ घण्टा अच्छी पुस्तकें पढ़ो। भक्तोंके चरित्र पढ़ो।

श्रोता—भक्तिमार्गमें साधकको क्या सावधानी रखनी चाहिये?

स्वामीजी—यह सावधानी रखो कि 'मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे हैं'। भगवान्‌को हरदम याद रखो और 'हे नाथ! हे मेरे नाथ! 'हे मेरे प्रभो! हे मेरे स्वामी!'—ऐसे बार-बार कहते ही रहो। 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'—यह हरदम कहते रहो। इससे बहुत लाभ होता है, ऐसा कइयोंने अनुभव किया है। अपना सम्बन्ध भगवान्‌के साथ रखो। संसारसे निर्लेप रहो; क्योंकि संसार अपना नहीं है। संसारमें हम आये हैं और जाना है।

श्रोता—भगवान् परीक्षा क्यों लेते हैं?

स्वामीजी—दूसरोंकी परीक्षा और भगवान्‌की परीक्षामें फर्क है। दूसरे आदमी तो जानते नहीं, इसलिये खुद जाननेके लिये दूसरेकी परीक्षा लेते हैं, पर भगवान् परीक्षा लेते हैं दूसरेको जनानेके लिये। भगवान् तो अन्तर्यामी हैं, सब जानते हैं। वे परीक्षा लेकर दूसरेको जनाते हैं कि तू कैसा है, कितनी प्रतिकूलता सह सकता है, कितना मुझे अपना मानता है? वे भक्तको सावधान करनेके लिये, कसौटीमें कसकर सिद्ध करनेके लिये परीक्षा लेते हैं। वे भक्तको पक्का बनानेके लिये परीक्षा लेते हैं, छुड़ानेके लिये नहीं। यह भगवान्‌का स्वभाव है!

आप भगवान्‌पर दृढ़ विश्वास रखो। कितनी ही आफत आ जाय, विचलित मत होओ। भगवान्‌को

जान नहीं सकते। उनपर विश्वास ही करना पड़ता है। विश्वासके बिना भक्ति नहीं होती—*'बिनु बिस्वास भगति नहिं'* (मानस, उत्तर० ९० क)। वे ही सन्त हुए हैं, वे ही भक्त हुए हैं, जिन्होंने भगवान्‌पर विश्वास किया है। सुख-दु:खकी कीमत नहीं है, भगवान्‌पर विश्वासकी कीमत है। सुख-दु:ख तो दिन और रातकी तरह बदलनेवाले हैं। भगवान् बदलनेवाले नहीं हैं। वे सदा आपके साथ रहते हैं।

***　　　***　　　***

मनुष्यका खास कर्तव्य है—जड़ताके साथ सर्वथा सम्बन्ध-रहित होना। इस बातका खुलासा हमें बहुत कम जगह मिला है। स्थूल-सूक्ष्म-कारणशरीर प्रकृतिके हैं और हम प्रकृतिसे अतीत परमात्माके अंश हैं। हमारा सम्बन्ध परमात्माके साथ है, प्रकृतिके साथ नहीं। अत: शरीर प्रकृतिके कार्य संसारकी सेवाके लिये ही है, हमारे लिये नहीं है। इस बातको जाननेकी बहुत जरूरत है। इस बातका खुलासा हमें हरेक जगह मिला नहीं। इस विषयमें एक विशेष बात मेरेको यह मिली है कि **शरीर परमात्माकी प्राप्तिमें न साधक है, न बाधक है।** परन्तु जो विवेकशक्ति मनुष्यमें है, वह अन्य योनियोंमें नहीं है।

जबतक भगवत्सम्बन्धी रस नहीं आता, तभीतक 'काम' अपना प्रभाव डालता है। साधनकी अच्छी अवस्था होनेपर भी भोगोंमें रसबुद्धि निवृत्त नहीं होती। भोग अच्छे लगते हैं, प्यारे लगते हैं, सुख मिलता है—यह चीज साधकमें बहुत दूरतक रहती है। परन्तु परमात्माका साक्षात्कार होनेपर वह रसबुद्धि निवृत्त हो जाती है—**'रसवर्जं रसोऽप्यस्य परं दृष्ट्वा निवर्तते'** (गीता २। ५९)।

कनक और कामिनी (धन और स्त्री)—इन दोको साधकके लिये बड़ा बाधक बताया गया है। इन दोनोंमें धनके विषयमें ईमानदार आदमी, मुनीम मिल जायँगे। लाखों रुपये पासमें हैं, पर उनका मन नहीं चलता। परन्तु स्त्रीके विषयमें बचे रहनेवाले आदमी मिलने मुश्किल हैं। तात्पर्य है कि कनककी अपेक्षा कामिनीको जीतनेवाले बहुत कम होते हैं।

जिनके चित्तमें व्याकुलता रहती है, कहीं शान्ति नहीं मिलती, ऐसे आदमियोंमें कामवृत्ति ज्यादा होती है। **आदमी जितना दु:खी रहता है, उतनी ही उसमें कामवृत्ति ज्यादा होती है।** वह जितना भगवान्‌के भजन-ध्यानमें प्रसन्न रहता है, उतनी कामवृत्ति कम होती है। मनुष्य ज्यों सत्संग करेगा, पारमार्थिक बातोंमें गहरा उतरेगा, त्यों उसकी कामवृत्ति स्वाभाविक कम हो जायगी। जैसे बालकको काँचके लाल-पीले टुकड़े भी बड़े अच्छे लगते हैं, पर बड़े होनेपर जब रुपये अच्छे लगने लगते हैं, तब काँचके टुकड़ोंमें अरुचि हो जाती है। ऐसे ही जब भजन-ध्यानमें, भगवन्नाममें, कीर्तनमें रस आने लग जायगा, तब कामवृत्ति नष्ट हो जायगी।

मधुसूदनाचार्यजीने लिखा है—

कामक्रोधभयस्नेहहर्षशोकदयाऽऽदय:　　।
तापकाश्चित्तजतुनस्तच्छान्तौ　कठिनं तु तत्॥

(भक्तिरसायन १। ५)

'काम, क्रोध, भय, स्नेह, हर्ष, शोक, दया आदि भाव चित्तरूपी लाखको तपाकर द्रवित करनेवाले हैं। उस भावरूपी उष्णताके शान्त होनेपर चित्तरूपी लाख ज्यों-की-त्यों कठोर हो जाती है।'

काठिन्यं विषये कुर्याद् द्रवत्वं भगवत्पदे।
उपायै:　शास्त्रनिर्दिष्टैरनुक्षणमतो　बुध:॥

(भक्तिरसायन १। ३२)

'बुद्धिमान् मनुष्यको चाहिये कि अपने चित्तको सांसारिक विषयोंमें तो कठोर रखे, पर भगवत्सम्बन्धी

शास्त्रोक्त उपायोंसे उसे भगवान्‌के चरणोंमें प्रतिक्षण द्रवित करे।'

तात्पर्य है कि भगवत्सम्बन्धी बातोंमें तो हृदयको द्रवित करना चाहिये, पर सांसारिक भोग भोगनेमें हृदयको कठोर रखना चाहिये अर्थात् ज्यादा राजी नहीं होना चाहिये। उसमें राजी होकर रस लोगे तो उसके पक्के संस्कार पड़ जायँगे। कारण कि काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मात्सर्य, ईर्ष्या, द्वेष, भय आदिमें चित्त पिघल जाता है। जैसे पिघले हुए मोममें जो रंग पड़ जाता है, वह उससे तदाकार हो जाता है, उसके भीतर गहरा बैठ जाता है, ऐसे ही पिघले हुए चित्तमें जो बात बैठ जाती है, उसके संस्कार भीतर बैठ जाते हैं। कभी भयभीत होकर कोई बात की तो वह बात जन्मभर भूलती नहीं। कोई कड़वी बात कह दे तो वह उम्रभर याद रहती है। किसीने अपमान कर दिया तो उम्रभर याद रहेगा कि उस आदमीने मेरा अपमान किया। इसलिये भगवान्‌की कथा, कीर्तन आदिमें चित्तको द्रवित करना चाहिये। भगवान् कहते हैं—

वाग्गद्गदा द्रवते यस्य चित्तं-
रुदत्यभीक्ष्णं हसति क्वचिच्च।
विलज्ज उद्गायति नृत्यते च
मद्भक्तियुक्तो भुवनं पुनाति॥

(श्रीमद्भा० ११। १४। २४)

'जिसकी वाणी मेरे नाम, गुण और लीलाका वर्णन करते-करते गद्‌गद हो जाती है, जिसका चित्त मेरे रूप, गुण, प्रभाव और लीलाओंका चिन्तन करते-करते द्रवित हो जाता है, जो बारंबार रोता रहता है, कभी हँसने लग जाता है, कभी लज्जा छोड़कर ऊँचे स्वरसे गाने लगता है और कभी नाचने लग जाता है, ऐसा मेरा भक्त सारे संसारको पवित्र कर देता है।'

ऐसे द्रवित चित्तमें जब भगवत्सम्बन्धी बातें बैठ जाती हैं, तब काम, क्रोध आदि चित्तसे निकल जाते हैं।

***   ***   ***

श्रोता—भगवान्‌के दरबारमें भी पोल है, इसका क्या मतलब है?

स्वामीजी—पोल यह है कि 'हे नाथ! हे नाथ!' कहें तो भगवान् सब भूल जाते हैं! परन्तु सच्चे हृदयसे कहें। वहाँ ठगाई नहीं चलेगी!

श्रोता—ज्ञान और प्रेममेंसे योग निकाल दें तो असमर्थता आ जायगी—इसका क्या मतलब है?

स्वामीजी—योगमें सामर्थ्य है। कुछ भी चाहना न करना—यही सामर्थ्य है। चाहना करना ही कमजोरी है। जो धनकी चाहना करता है, वह धनसे कमजोर हो जाता है। जो कमजोर होता है, वही चाहना करता है, नहीं तो चाहना क्यों करे? अत: कर्मोंमें जो निष्कामभाव है, वही बल है।

श्रोता—नामजप करनेसे पहले तो मन पूरी तरहसे लग जाता है, फिर थोड़ा भी कोई विचार आ जाय तो फिर वापिस मन नहीं लगता। क्या करें?

स्वामीजी—भगवान्‌से प्रार्थना करते रहो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। फिर ठीक हो जायगा।

श्रोता—मैं नामजप करता हूँ तो सन्ध्या मुझे व्यवधान मालूम देती है, तो सन्ध्या छोड़ दूँ क्या?

स्वामीजी—नहीं। अगर आप द्विजाति (ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य) हैं तो सन्ध्या नहीं छोड़नी चाहिये। द्विजातिके लिये यह टैक्स है, भजन नहीं। अगर आपने जनेऊ धारण नहीं किया हो तो

सन्ध्या तथा गायत्रीका जप नहीं करना चाहिये।

ये समझते हैं कि हम गायत्रीके जपसे बड़े हो जायँगे। पर आप गायत्री-जपसे कभी बड़े नहीं होंगे! गायत्री-जप द्विजातिके लिये टैक्स है। टैक्स देना क्या बड़ी बात है? टैक्स देनेवाला बड़ा आदमी नहीं होता। भगवान्‌का भजन करनेवाला बड़ा होता है।

श्रोता—मुक्तिका कोई सरल उपाय बताइये।

स्वामीजी—हे नाथ, मैं आपका हूँ—ऐसा मान लो, फिर मुक्तिकी चिन्ता मत करो।

श्रोता—गुरु-मन्त्रका जप अधिक करना चाहिये या महामन्त्रका जप अधिक करना चाहिये?

स्वामीजी—जिसमें आपका मन ज्यादा लगे, उस मन्त्रका जप करना चाहिये। मन्त्र बड़ा होता है मन लगनेसे। मन लग जाय, प्रेम आ जाय, हृदय गद्‌गद हो जाय तो मन्त्र बहुत बड़ा हो जायगा।

हमारे मनमें यह बात आती है कि सब भाई-बहन, चाहे वे किसी भी वर्ण, आश्रम आदिके हों, 'हे नाथ! हे प्राणनाथ! हे परमेश्वर! हे मेरे स्वामी!' पुकारो। पुकार सबसे बड़ा, उत्तम साधन है। इसमें इतना बल है कि भगवान्‌को भी खींच ले!

***   ***   ***

मेरे मनमें आती है कि आप सभी सन्त-महात्मा बन जायँ। **सन्तपना स्वाभाविक है, बनावटी नहीं।** बनावटी संसार है। आप दृढ़तासे मान लें कि हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं। भगवान्‌के सिवाय अपनी चीज कोई है ही नहीं। जैसे आप अभी इस मण्डपमें आरामसे बैठे हैं। बिछौना भी है, पंखा भी है, छाया भी है। पर क्या आप मानते हो कि हम इसके मालिक हैं? आपके हृदयमें जँचती ही नहीं कि हम मालिक हैं। ऐसे ही अपने घरको मानना चाहिये।

भगवान् सबके हृदयमें विराजमान हैं। वे सब जानते हैं, सब देखते हैं, सब बातें सुनते हैं। वे हमारे भीतरके भावोंको भी जानते हैं, नीयतको जानते हैं, स्वभावको जानते हैं। हमारे मनमें जो बात आती है, उसको भी जानते हैं। पर सब जानते हुए भी माफ कर देते हैं! ऐसा माफ करनेवाला कोई नहीं है। कोई पुण्यात्मा हो या पापी, सज्जन हो या दुष्ट, उनकी बनायी हुई सृष्टि सबके लिये समान है। पृथ्वी सबको जगह देती है। अन्न-जल सबकी भूख-प्यास मिटाते हैं। वायु सबको श्वास लेने देती है। ऐसे भगवान्‌के रहते हुए डर किस बातका?

संसारमें ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है, जो सर्वथा निर्दोष हो, जिसने कभी गलती न की हो। **अगर भगवान् हमारे कर्मोंको देखने लग जायँ कि इसने ऐसा-ऐसा किया तो एकका भी कल्याण होना मुश्किल है! भगवान् हमारे अवगुणोंको देखते नहीं—इस कारणसे हमारा कल्याण होगा, नहीं तो कल्याण नहीं हो सकता!** भगवान् हमारी करनीकी तरफ देखते नहीं, तभी सबका काम चलता है। भगवान्‌का स्वभाव ही ऐसा है—

रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की॥

(मानस, बाल० २९। ३)

हमारेको जो सत्संगकी बातें मिलती हैं, उनके मिलनेमें कृपाके सिवाय और कोई कारण नहीं है। हमने ऐसा कोई उद्योग नहीं किया है, फिर भी उनकी कृपासे ऐसी-ऐसी बातें मिलती हैं! ऐसी कृपाके रहते हुए हम क्यों घबराएँ? बड़े-बड़े सन्त-महात्मा हुए हैं, उनकी कृपासे ही हुए हैं। बड़े-बड़े सन्त-महात्मा भी भगवान्‌के सामने यह कह नहीं सकते कि हम सर्वथा शुद्ध हैं। इसलिये चिन्ता छोड़कर 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो और हरदम प्रसन्न रहो, मस्त रहो! अपनी तरफसे कोई

गलती मत करो, सावधानी रखो।

*** *** ***

श्रोता—चित्त अपने-आप शुद्ध क्यों नहीं होता?

स्वामीजी—आप तो चित्तको अशुद्ध करो और चित्त अपने-आप शुद्ध हो जाय, ऐसा कैसे होगा? **आप अशुद्ध मत करो तो चित्त अपने-आप शुद्ध हो जायगा।** चीज तो पहलेसे ही शुद्ध है। जंगल शुद्ध रहता है, पर जहाँ मनुष्य जाते हैं, वहाँ गन्दगी कर देते हैं। प्रकृति स्वतः शुद्ध कर रही है। आप अशुद्ध मत करो, इतनी कृपा करो!

श्रोता—आपने बताया कि मुक्ति और प्रेमकी प्राप्ति मनुष्यका खास काम है, तो हमारा जल्दी-से-जल्दी कैसे काम बने? उपाय बतायें।

स्वामीजी—हमारा काम जल्दी कैसे बने—इस बातको हरदम जाग्रत् रखो। भगवान्‌की कृपा सम्पूर्ण जीवोंपर हरदम बरस रही है। हे नाथ! मेरा काम कैसे बने? मैं क्या करूँ?—इसकी हरदम लगन लगाओ तो काम बन ही जायगा। आप करके देख लो; नहीं बने तो मेरेको दण्ड देना! भगवान्‌के दरबारमें ग्राहककी जरूरत है। ग्राहक हो तो जरूर वस्तु मिलती है। जिसका सच्चा स्नेह होता है, उसको वह वस्तु जरूर मिलती है, इसमें सन्देह नहीं है—

जेहि कें जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलइ न कछु संदेहू॥

(मानस, बाल० २५९। ३)

आप सच्चा स्नेह जाग्रत् करो तो जरूर फायदा होगा। आप आठ पहर यह लगन लगाकर देखो कि 'मेरा काम कैसे बने.....मेरा काम कैसे बने?'। फिर मेरेसे मिलो। संसारका कोई पदार्थ माँगनेमात्रसे नहीं मिलता, पर पारमार्थिक सिद्धि माँगनेमात्रसे मिलती है। इसलिये भगवान्‌को पुकारो। **कोई गुरुकी, कोई ग्रन्थोंकी जरूरत नहीं है, केवल 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। आपका काम बनेगा।** भूख लगे तो रोटी खा लो, प्यास लगे तो जल पी लो, नींद आये तो सो जाओ और जागते समय 'हे नाथ! हे मेरे प्रभो! मेरा काम कैसे बने!' यह लगन लगाये रखो। स्वयंज्योतिजी महाराजसे किसीने पूछा कि भजन कैसे हो, तो उन्होंने कहा कि 'भजन भूखसे (लगनसे) होता है'।

श्रोता—आजकल जन्मदिन मनानेकी प्रथा बहुत चल गयी है, हमें क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—महान् मूर्खता है! जन्मदिन आनेपर रोना चाहिये या हँसना चाहिये? आप बताओ। आज उम्रके इतने दिन खत्म हो गये तो रोना चाहिये कि हँसना चाहिये? एक वर्ष कम हो गया तो मौत नजदीक आयी या दूर गयी? उम्र घटी है या बढ़ी है? उम्र घटी है तो दुःख होना चाहिये। आपकी उम्र आपका सबसे बड़ा, सबसे कीमती धन है। वह उम्र घट गयी, मौत नजदीक आ गयी तो राजी होते हैं, खुशी मनाते हैं! रोना चाहिये कि एक वर्ष मौत नजदीक आ गयी!

*** *** ***

सहजावस्था सबसे उत्तम है—'**उत्तमा सहजावस्था**'। सहजावस्था स्वतःसिद्ध और स्वाभाविक है। उसमें बनावटीपना नहीं है। वह सहजावस्था सबको प्राप्त है, अप्राप्त नहीं है। अप्राप्तिका वहम है। अभी मनुष्योंकी जो अवस्था है, वह बनावटी है। इसको असली समझ लेना गलती है। इसको असली समझ लेनेसे असली अवस्था (सहजावस्था)-की भूली हो गयी। जबतक सहजावस्था प्राप्त नहीं होती, तबतक जीव जन्म-मरणके चक्रमें पड़ा रहता है। सहजावस्थाको प्राप्त होना ही मुक्ति है। कई मुक्तिको भी ठुकरा देते हैं और प्रेमको प्राप्त हो जाते हैं। प्रेमको प्राप्त हो जाना असली चीज है, जिससे

मनुष्यजन्म सफल हो जाता है। उसकी प्राप्तिके लिये ही मनुष्यजन्म है। सृष्टिकी रचना मनुष्योंके लिये और मनुष्योंकी रचना भगवान्‌के लिये है। भगवान्‌को प्राप्त करनेका मनुष्यमात्रको अधिकार है। यह अधिकार बार-बार नहीं मिलता, कभी-कभी ही मिलता है।

जो **'वासुदेवः सर्वम्'** है, वही सहजावस्था है। सहजावस्थाका नाम ही **'वासुदेवः सर्वम्'** है। उसको प्राप्त करके मनुष्य कृतकृत्य, ज्ञातज्ञातव्य और प्राप्तप्राप्तव्य हो जाता है।

श्रोता—सहजावस्थाका अनुभव कैसे हो?

स्वामीजी—एक बड़ी मार्मिक बात है कि सहजावस्था आपको-हमको कोई नयी बनानी नहीं है। वह तो आपकी-हमारी स्वतः-स्वाभाविक है। उसका नाम ही सहजावस्था है। 'सहज' का मतलब है कि वह हमारे साथ ही पैदा हुई है। इसके अनुभवमें सांसारिक भोग व संग्रहकी इच्छा ही बाधा है, इसके सिवाय कोई बाधा नहीं है। भोग भोगना और संग्रह करना—ये दो बीमारियाँ बड़ी भयंकर हैं। इन दोनोंको सर्वथा हटा दें तो सहजावस्थाका अनुभव हो जायगा। पापी-से-पापी, दुराचारी-से-दुराचारीकी भी सहजावस्था स्वाभाविक है। केवल नाशवान्‌का आकर्षण, उसमें महत्त्वबुद्धि ही बाधक है, और कोई बाधक नहीं है। यह बड़ी दुर्लभ बात है, जल्दी मिलती नहीं! इसको जाननेवाले भी बहुत कम हैं! कितने ही व्याख्यानदाता हैं, पर इस बातकी गन्ध ही नहीं है! कम-से-कम गन्ध तो आये, गंगाजीकी ठण्डी हवा तो आये, पर ठण्डी हवा ही नहीं है!

जीव भगवान्‌का अंश है—इसके समान बढ़िया बात कोई है ही नहीं! **मेरा आपसे हाथ जोड़कर कहना है कि इस बातको महत्त्व दो कि मैं भगवान्‌का हूँ। इस बातको आप पक्का करो। इसके समान कोई चीज है नहीं, हुई नहीं, होगी नहीं, हो सकती नहीं।** केवल नाशवान्‌का आकर्षण ही बाधा है। आप नाशवान्‌का आकर्षण छोड़ दो तो आपकी ऊँची-से-ऊँची स्थिति हो जायगी। आप स्वयं अविनाशी होते हुए भी नाशवान्‌को महत्त्व देते हैं, इससे बड़ी भूल और क्या होगी? जड़ चीजोंको महत्त्व दे रहे हो तो चिन्मयताकी प्राप्ति कैसे होगी? जो चीज मिलने और बिछुड़नेवाली है, उसको अपनी मत मानो तो सहजावस्थाका अनुभव हो जायगा।

***　　　***　　　***

जिसके मनमें गुरु बननेकी इच्छा है, उससे लाभ नहीं होता। जिसके मनमें चेले, बेटे, धन, स्त्री, मान, बड़ाई आदिकी तृष्णा है, वह कभी गुरु नहीं बन सकता। वहाँ धोखा है! **भगवान्‌से सम्बन्ध जोड़नेके लिये दलालकी जरूरत नहीं है।** गुरु जिसकी बात बतायेगा, उस भगवान्‌के साथ सबका सीधा सम्बन्ध है—**'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता १५। ७); ***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी'*** (मानस, उत्तर० ११७। १)। भगवान् हमारे परमपिता हैं। उनके और हमारे बीचमें पीढ़ियाँ नहीं पड़तीं।

जिनके मनमें गुरु बननेकी ज्यादा इच्छा है, उनके द्वारा गुरु बनानेकी बातका ज्यादा प्रचार किया गया है। जब हम भगवान्‌के साक्षात् अंश हैं, तब बीचमें नया सम्बन्ध बनानेकी क्या जरूरत है? **जो वास्तवमें गुरु बननेके लायक हैं, उनके भीतर शिष्य बनानेकी इच्छा नहीं होती।** जिसके भीतर इच्छा होती है, वह छोटा होता है। जिसे खुद चाहिये, वह दूसरेको क्या देगा?

हमें जो कुछ मिलता है, भगवान्‌की कृपासे ही मिलता है। हमें सत्संग मिलता है, अच्छी बातें मिलती हैं तो भगवान्‌की कृपासे ही मिलती हैं। भगवान् जब देना चाहते हैं तो भोले बालकसे भी ज्ञान मिल जाता है। गीताप्रेसके एक ट्रस्टी थे—जयदयालजी कसेरा। वे रोजाना पद गाया करते—***'नाथ म्हाने चाकर राखो जी'***। एक दिन तीसरी मंजिलसे उनका छोटा पोता बोला कि 'बाबूजी!

आपको चाकर रख दिया'। उसी दिनसे उन्होंने वह पद गाना छोड़ दिया। भगवान् जब उपदेश देना चाहें तो किसीके द्वारा भी दे सकते हैं। वे गुरुओंके भी महान् गुरु हैं—'**गुरुर्गरीयान्**' (गीता ११। ४३)।

आजकल सब चीज नकली मिल रही है तो क्या गुरु असली मिलेगा! ऐसे गुरुको तो दूरसे ही नमस्कार करो। नजदीक जाओगे तो कोई-न-कोई आफत आयेगी! भगवान्‌की कृपासे सब कुछ होगा। आप कृपाका सहारा लेकर चल पड़ो।

कोई भी अपनेको अनाथ न माने कि मेरा कोई मालिक नहीं है। सब भगवान्‌के हैं। **कोई भी प्राणी अनाथ नहीं है।**

श्रोता—मैं तीन-चार सालसे सत्संग कर रहा हूँ, पर मुझे लाभ नहीं हो रहा है!

स्वामीजी—सत्संग नहीं हुआ है! यह एक सच्चर्चा है। इसको भी सत्संग नामसे कहते हैं। पर असली सत्संग है—सत् अर्थात् परमात्माका संग। परमात्माके साथ प्रेम होनेका नाम सत्संग है।

***   ***   ***

समय बड़ी तेजीसे जा रहा है। सब भाई-बहन सावधान होकर भगवान्‌के चिन्तनमें लग जाओ हरदम भगवान्‌से कहते रहो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। भगवान्‌की स्मृति सम्पूर्ण विपत्तियोंका नाश करनेवाली है—'**हरिस्मृतिः सर्वविपद्विमोक्षणम्**' (श्रीमद्भा० ८। १०। ५५)। अँधेरी रातमें एक दीपक अथवा लालटेन हाथमें हो तो उसका भी सहारा होता है, प्रकाश होता है। इसी तरह भगवान्‌की स्मृति एक प्रकाश है। इसके सिवाय संसारमें कोई सहारा नहीं है। भगवान्‌के स्मरणमात्रसे मनुष्य संसार-बन्धनसे छूट जाता है—'**यस्य स्मरणमात्रेण जन्मसंसारबन्धनात्। विमुच्यते.........**' (महाभारत, अनुशासन० १४९)। भगवान्‌को यादमात्र करनेसे सब काम ठीक हो जाते हैं। इसलिये सच्चे हृदयसे 'हे नाथ! हे नाथ!!' पुकारो। भगवान्‌से एक ही बात कहो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं; ऐसी कृपा करो कि आपको भूलूँ नहीं'।

शम्भुः श्वेतार्कपुष्पेण चन्द्रमा वस्त्रतन्तुना।
अच्युतः स्मृतिमात्रेण साधवः करसम्पुटैः॥

अर्थात् शंकर सफेद आकके फूलसे, चन्द्रमा वस्त्रके तन्तुसे और सन्त-महात्मा हाथ जोड़नेसे प्रसन्न हो जाते हैं, पर भगवान् तो स्मरण करनेमात्रसे प्रसन्न हो जाते हैं! स्मरणके सिवाय किसी वस्तुकी, किसी उद्योगकी जरूरत नहीं। कुन्ती माताने भगवान्‌से कहा कि देख कन्हैया, तेरे भाई पाण्डव जंगलमें दुःख पा रहे हैं, तेरेको दया नहीं आती? तो भगवान्‌ने यही उत्तर दिया कि बूआजी, मैं क्या करूँ, द्रौपदीका चीर खींचा गया तो उसने मेरेको याद किया, पर युधिष्ठिरने सब कुछ दाँवमें लगा दिया और हार गया, मेरेको याद किया ही नहीं! कम-से-कम मेरेको याद तो कर लेते। तात्पर्य है कि **भगवान्‌को याद करनेमात्रसे कल्याण हो जाता है, सदाके लिये दुःख मिट जाता है, महान् आनन्दकी प्राप्ति हो जाती है। इतना सस्ता सौदा और क्या होगा! साधन तो इतना सुगम, पर फल इतना महान्!** इतना सुगम काम भी आप-हम न कर सकें तो क्या करेंगे? इसमें न तो पैसा खर्च होता है, न कोई परिश्रम होता है। इसलिये आपसे यह कहना है कि सुबह नींद खुलनेसे लेकर रात्रि नींद आनेतक हरदम 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं' यह कहना शुरू कर दो। आपके मनमें भगवान्‌का जैसा स्वरूप जँचा है, उसको याद करो और यह लगन लगा दो कि 'हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। इसीमें अपने-आपको खो दो। फिर सब काम ठीक हो जायगा, इसमें सन्देह नहीं।

भगवान्‌ने गीतामें अर्जुनसे कहा है—**'तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युध्य च'** (गीता ८। ७) 'तू सब समयमें मेरा स्मरण कर और युद्ध भी कर'। इसका तात्पर्य यह हुआ कि समयपर तो काम-धंधा करो और हरदम भगवान्‌को याद करो। आप शुद्ध हों, अशुद्ध हों, अच्छे हों, मन्दे हों, स्वस्थ हों, बीमार हों, धनी हों, निर्धन हों, कैसे ही क्यों न हों, केवल भगवान्‌को याद करो। हृदयसे, प्रेमसे, आर्त होकर, रोकर, पुकारकर भगवान्‌से कहो कि 'हे मेरे नाथ! ऐसी कृपा करो, मैं आपको भूलूँ नहीं'। केवल भगवान्‌की यादमात्रसे कल्याण हो जाय! लगन आपकी और कृपा भगवान्‌की! कितनी सुगम, सरल बात है! **तरह-तरहके उपाय हैं, पर सीधा-सरल उपाय है—'हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'।** केवल याद करनेसे सदाके लिये दु:ख मिट जाय, यह कितना सुगम साधन है! इतना सुगम साधन भी नहीं करेंगे तो और क्या करेंगे आप?

सच्चे हृदय से प्रार्थना जब भक्त सच्चा गाय है।
तो भक्तवत्सल कान में वह पहुँच झट ही जाय है॥

भगवान्‌के सब जगह ही कान हैं—**'सर्वतः श्रुतिमल्लोके'** (गीता १३। १३)। आप बोलते हो भगवान्‌के कानमें ही बोलते हो। भगवान्‌से कहो कि 'हे नाथ! एक ही प्रार्थना है कि मैं आपको भूलूँ नहीं। इसके सिवाय मेरेको न धन-सम्पत्ति चाहिये, न मान-बड़ाई चाहिये, न संसारमें यश-कीर्ति चाहिये, न प्रसिद्धि चाहिये। बस, एक ही बात चाहिये कि आपको भूलूँ नहीं।' **एक ही बातमें आपका सब काम पूरा हो जायगा, कोई काम बाकी नहीं रहेगा।** अभीसे कहना शुरू कर दो कि 'हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। अगर हृदयमें भाव कम हो तो भी कहना शुरू कर दो। कहते-कहते नकल भी असल हो जाती है। काम-धंधा करते हुए, रसोई बनाते हुए, झाड़ू देते हुए, जल भरते हुए, हर समय कहते रहो कि 'हे नाथ! ऐसी कृपा करो कि मैं आपको भूलूँ नहीं', 'हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'।

भगवान्‌की याद आ जाय तो खुशी मनाओ कि यह भगवान्‌की कृपा हो गयी! **एक बात याद रखो कि जितनोंका कल्याण हुआ है, केवल भगवान्‌की कृपासे हुआ है।** कल्याण होनेमें उनकी करनी खास नहीं है, कृपा खास है। ऐसा कोई भी भक्त नहीं कह सकता कि मैं सर्वथा निष्पाप हूँ। निष्पाप होता तो संसारमें जन्म क्यों होता? भगवान् माफ करते हैं, तभी कल्याण होता है। सर्वथा निष्पाप, पवित्र होकर अपना कल्याण कर ले, ऐसी ताकत किसीमें नहीं है।

भगवान् सब जगह हैं, पर बिना याद किये वे काम नहीं आते। एक आदमीकी गाय बीमार हो गयी। वैद्यने कहा कि तुम गायको काली मिर्च खिलाकर ऊपरसे एक पाव घी पिला दो। उस आदमीने गायको काली मिर्च तो दे दी, पर घी नहीं दिया। उसने सोचा कि रोज गायके दूधसे एक पाव घी निकलता है; अत: एक दिन गायको दुहूँगा नहीं, जिससे घी उसके भीतर ही रह जायगा। परन्तु इससे गाय और बीमार हो गयी! तात्पर्य है कि गायके शरीरमें घी मौजूद रहता हुआ भी गायके काम नहीं आता। विधिपूर्वक निकाला हुआ घी ही काम आता है। इसी तरह भगवान् सब जगह रहते हुए भी काम नहीं आते। पर उनको याद करो तो बेड़ा पार है! यह निकाला हुआ घी है! इसलिये **सब जगह भगवान्‌को देखो और उनको याद करो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'।** आप पापी या पुण्यात्मा कैसे ही क्यों न हों, केवल भगवान्‌को यादमात्र करनेसे शान्ति मिल जायगी। घी निकालनेमें तो मेहनत होती है, पर इसमें मेहनत है ही नहीं। केवल याद करना है कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। हमें और कुछ नहीं चाहिये, केवल एक ही माँग है कि 'हे मेरे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'।

***　　　　***　　　　***

एक ऐसी बढ़िया बात है कि आप आज मान लो तो आज ही काम पूरा है! **जिन-जिनको आप अपना मानते हो, वे व्यक्ति अथवा पदार्थ अपने कबसे हैं और कबतक रहेंगे?** इस बातपर सब भाई-बहन विचार करें। क्या वे सदासे साथमें थे? क्या वे सदा साथमें रहेंगे? उनमें अपनापन केवल नाटकमें स्वाँगकी तरह व्यवहार करनेके लिये है। आप लखपति हैं तो कितने दिनसे हैं और कितने दिनतक रहेंगे? आज मर जाओ तो एक कौड़ी भी साथमें है? केवल वहम पड़ा है कि मैं लखपति हूँ। दो आँखें मिच गयीं तो फिर कुछ भी अपना नहीं रहेगा—

चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूलाः
सद्बान्धवाः प्रणयगर्भगिरश्च भृत्याः।
वल्गन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरङ्गाः
सम्मीलने नयनोर्न हि किञ्चिदस्ति॥

(भोजप्रबन्ध २००)

'मेरी स्त्रियाँ मनको मोहनेवाली हैं, मित्र मेरे अनुकूल चलनेवाले हैं, बन्धुजन सुयोग्य हैं, सेवक मीठी बोली बोलनेवाले हैं, कितने ही हाथी चिंघाड़ रहे हैं और घोड़े हिनहिना रहे हैं। परन्तु आँख मूँदनेपर कुछ भी नहीं है!'

इसलिये आप अभी मन-से सबको छोड़ दो। बर्ताव बड़े प्रेमका, आदरका करो, सबकी सेवा करो, पर हृदयसे किसीको अपना मत मानो। अगर इस बातको आप आज मान लो तो आज ही जीवन्मुक्ति है, आज ही कल्याण है!

भगवान्‌के सिवाय और कोई अपना नहीं है। 'मैं संसारका हूँ और संसार मेरा है'—ऐसा कहनेकी ताकत किसीमें भी नहीं है, पर 'मैं भगवान्‌का हूँ और भगवान् मेरे हैं'—ऐसा छोटे-बड़े सब कह सकते हैं।

***　　　　***　　　　***

हम भगवान्‌के अंश हैं—यह सार बात है। यह बात मैं बार-बार कहता हूँ और फिर भी कहनेकी मनमें आती है। भगवान् हमारे परमपिता हैं। अपने खास बापको भी न मानना, उसको भी भूल जाना कितनी बड़ी गलती है! भगवान् खुद कहते हैं—**'ममैवांशो जीवलोके'** (गीता १५। ७) 'जीव केवल मेरा ही अंश है।' चौरासी लाख योनियाँ हैं और एक-एक योनिमें लाखों-करोड़ों-अरबों जीव हैं, वे सब-के-सब जीव केवल भगवान्‌के ही अंश हैं।

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥

(मानस, उत्तर० ११७। १)

एक बड़ी सार, मार्मिक, रहस्यकी बात है कि मूलमें आप बिलकुल 'अमल' हैं। मल, पाप पीछे लगा है। उसको आपने स्वीकार किया है। अगर आप स्वीकार न करो तो पापकी ताकत नहीं कि आपसे चिपक जाय। मूलमें भगवान्‌का अंश होनेसे आप चेतन, अमल, सहज सुखराशि हैं। आप कह सकते हैं कि हम स्वाभाविक सुखराशि कैसे हैं? इसके लिये एक ऐसी बात है, जिसे आपको मानना पड़ेगा। सुषुप्ति (गाढ़ नींदमें)-में जब आप संसारको भूल जाते हैं, तब आपको सुखका अनुभव होता है। अगर संसारका सम्बन्ध छोड़ दो तो महान् सुख हो जाय!

आपको यह वहम हो गया है कि संसारसे सुख होता है। जैसे, यह वहम हो गया कि रुपयोंसे

सुख होता है। वास्तवमें रुपया न रखनेमें बड़ा भारी सुख है। आपने तो केवल रुपया रखकर देखा है, पर हमने रुपया रखकर भी देखा है और छोड़कर भी देखा है। छोड़नेसे जो सुख है, वह रुपयोंसे नहीं है। अगर आप गृहस्थमें हैं तो केवल इतनी बात मान लो कि रुपये भगवान्‌के हैं, मेरे नहीं। बड़ी ठोस, सच्ची, पक्की बात है कि जो मिलता है और बिछुड़ जाता है, वह अपना नहीं होता। हमारी चीज वह होती है, जो मिली ही रहती है, कभी बिछुड़ती है ही नहीं। **आपको वहम है कि वस्तुएँ लेनेसे हम सुखी होंगे, पर वास्तवमें सुखी होंगे वस्तुओंको अपनी न माननेसे।** विचार करें, आपने जिन वस्तुओं तथा व्यक्तियोंको अपना नहीं माना, उनको लेकर क्या आपको दु:ख होता है ?

***　　***　　***

श्रोता—सब कुछ परमात्मा ही हैं—इसका ठीक अनुभव होता है, पर साथ ही यह भय बना रहता है कि यह स्थिति हट नहीं जाय तो क्या यह दोष है ?

स्वामीजी—पारमार्थिक उन्नतिमें कभी शंका करनी ही नहीं चाहिये। कारण कि पारमार्थिक उन्नतिमें कभी पतन होता ही नहीं। सांसारिक उन्नतिमें तो नफा और नुकसान दोनों होते हैं, पर आध्यात्मिक उन्नतिमें नफा-ही-नफा होता है, नुकसान होता ही नहीं। भय होता है तो यह अपने स्वभावके कारणसे है। किसी बातको बार-बार पकड़ने और छोड़नेकी आदत पड़ी हुई है। इस आदतके कारण भय होता है।

मैं चोटी रखनेकी, परिवार-नियोजन न करनेकी बातें कहता हूँ तो लोग समझते हैं कि स्वामीजी हिन्दू हैं, इसलिये ऐसी बातें कहते हैं। पर मैं कहता हूँ कि **हिन्दूधर्ममें मुक्ति जितनी सस्ती है, इतनी सस्ती किसी धर्ममें नहीं है, किसी शास्त्रमें नहीं है। मैं मुक्तिका पक्षपाती हूँ, हिन्दुओंका पक्षपाती नहीं हूँ।**

***　　***　　***

मेरेको ऐसा मालूम होता है कि भगवान्‌की बहुत विशेष कृपा है! मानो कोई हाथ पकड़कर चलाये! भगवान्‌की बात सुनने, कहने आदिकी जो रुचि पैदा हो रही है, वह भगवान्‌की कृपासे ही हो रही है। इसमें अपना उद्योग, अपनी मेहनत, अपना पुरुषार्थ नहीं है। यह भगवान्‌की तरफसे हो रहा है। भगवान्‌की कृपा बरसती है तो पात्र-कुपात्र, योग्य-अयोग्यको नहीं देखती। इस तरह हमलोगोंपर भगवान्‌की कृपा बरस रही है। अगर हम भगवान्‌के सम्मुख हो जायँ तो बहुत विशेष लाभ होगा। अर्जुनका मोह भी भगवान्‌की कृपासे नष्ट हुआ—**'नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत'** (गीता १८। ७३)। वह कृपा सभीपर समानरूपसे बरस रही है। आप मान लो कि हमारेपर भगवान्‌की विशेष कृपा है। अब भगवान्‌की आज्ञाके अनुसार जीवन बनेगा।

भगवान्‌ने चार बातें बतायी हैं—**'मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु'** (गीता १८। ६५)। १) **'मद्भक्तः'**—मेरा भक्त हो जा अर्थात् यह स्वीकार कर ले कि मैं केवल आपका हूँ और केवल आप ही मेरे हैं। २) **'मन्मनाः'**—मेरेमें मनवाला हो जा अर्थात् केवल मेरा ही चिन्तन कर ३) **'मद्याजी'**—मेरा पूजन करनेवाला हो अर्थात् खाना-पीना, उठना-बैठना, शौच-स्नान, भजन-कीर्तन, खेती-व्यापार आदि सब काम मेरा ही समझकर कर, और ४) **'मां नमस्कुरु'**—मेरेको नमस्कार कर अर्थात् मेरे शरण हो जा और मैं अनुकूल-प्रतिकूल जैसी परिस्थिति भेजूँ, उसको स्वीकार करके प्रसन्न रह।

***　　***　　***

श्रोता—भगवान्‌का भजन करनेसे संचित, प्रारब्ध और क्रियमाण कर्म नष्ट हो जाते हैं या हल्के पड़ जाते हैं?

स्वामीजी—ये नष्ट तो हो सकते हैं; परन्तु भजन करनेका यह तात्पर्य है ही नहीं। यह बेअक्लकी बात है, समझदारीकी बात नहीं! भजन-जैसी चीजको प्रारब्धमें लगाना महान् मूर्खता है! संसारी आदमी भी पैदल चल लेगा, पर पैसे खर्च नहीं करेगा। भजन क्या पैसेसे भी कम कीमती है? **प्रारब्ध तो भोगनेसे ही नष्ट हो जाता है, उसमें भजनको क्यों लगायें? उसमें भजनको लगाना भजनका महान् तिरस्कार है!** भजन भगवान्‌में प्रेमके लिये करें। सन्तोंसे कहेंगे कि महाराज, आप आशीर्वाद दो, मेरी लड़कीकी आँखें ठीक हो जायँ! महान् मूर्खता है! सन्तोंका सन्तपना एक लड़कीकी आँखें ठीक करनेके लिये खत्म कर दिया! आँखें फूट जायँ तो क्या हानि है? यही कारण है कि कल्याण नहीं हो रहा है।

जिससे जीवका कल्याण हो जाय, उसमें कामना करके बाधा लगा दी, क्या यह बुद्धिमानी है? आपसे प्रार्थना है कि यह सकामभाव मत रखो। सकामभाव महान् पतन करनेवाला है। तुच्छ कामनाके लिये अमूल्य भजनको खर्च कर देना महान् मूर्खता है। जिनसे परमात्माकी प्राप्ति हो जाय, मुक्ति हो जाय, उनसे यह माँगना कि हमारी लड़कीकी आँखें ठीक हो जायँ, हमारी खोयी हुई गाय मिल जाय; क्या यह बुद्धिमानी है? आज हम सत्संगमें इसलिये नहीं आये कि नींद आ गयी, इसलिये नहीं आये कि एक आदमी आ गया तो उससे बातोंमें लग गये, इसलिये नहीं आये कि वकीलके पास जाना था; क्या यह मनुष्यपना है? ऐसे लोग तत्त्वको समझते ही नहीं। नींद भी न आये, कोई बात करनेवाला भी न हो, कोई काम-धन्धा भी न हो, तब सत्संग करें, तो भाई, ऐसे सत्संगसे ऐसा ही लाभ होगा। कितने वर्ष बीत गये सत्संग करते हुए, पर बात वही रही! भगवान् शंकरको क्या कमी है? क्या उनको अपना कल्याण करना है? फिर भी वे माँगते हैं—

बार बार बर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग॥

(मानस, उत्तर० ७। १४ क)

जिसको भगवान् शंकर भी माँगते हैं, क्या वह मामूली चीज है? **अगर आप अपना कल्याण चाहते हो तो सकामभावका खाता ही उठा दो। यह सकामभाव आपके कल्याणमें बड़ी भारी बाधा है।**

एक बार स्वयंज्योतिजी महाराज बीकानेरमें ठहरे हुए थे। मेरे गुरुभाई, सहपाठी चिम्मनरामजी उनके पास गये। बात चलते-चलते उन्होंने स्वयंज्योतिजीसे पूछ लिया कि श्री..... आपके पास आते हैं क्या? वे बोले कि वह तो लण्ठराज (मूर्खराज) है! उनसे पूछा कि वह लण्ठराज कैसे है? स्वयंज्योतिजी बोले कि वह हमारेसे जो बातें सुनता है, वह गीताप्रेससे 'कल्याण' में छपवा देता है, खुद काममें लाता नहीं, इसलिये लण्ठराज है। चिम्मनरामजीने कहा कि महाराज, यह तो ठीक ही है, लोगोंका उपकार होता है। स्वयंज्योतिजी बोले कि तुम भी ऐसा करते हो, तो तुम भी लण्ठराज हो! मतलब है कि अपना कल्याण करना चाहिये। केवल बातें फैला देनेसे क्या लाभ?

सन्तोंके सिद्धान्तको समझना मामूली बात नहीं है। आप सच्चे हृदयसे अपना कल्याण चाहो तो समझ सकते हो।

***   ***   ***

श्रोता—सब कुछ वासुदेव ही है—ऐसा पढ़ते-सुनते समय तो भाव बनता है, पर यह स्थायी नहीं रहता। क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—इसका दु:ख होना चाहिये। भीतरसे दु:खी, व्याकुल होकर प्रार्थना करें तो भगवान्‌पर असर पड़ता है। बिना दु:खके कहना भगवान्‌पर भी असर नहीं करता। अगर दु:ख हो तो जीवके कल्याणकी बात भगवान् जरूर पूरी करते हैं, इसमें सन्देह नहीं है। जिसके होनेका दु:ख हो, वह हो जायगा और जिसके न होनेका दु:ख हो, वह मिट जायगा—दोनों काम भगवान्‌की कृपासे सिद्ध होते हैं। परन्तु आपकी बेपरवाह हो और संसारका सुख ज्यादा हो तो पूरी नहीं करते। आप भगवान्‌से हरदम कहते रहो तो कहते-कहते नकलसे भी असल हो जायगा।

आप सब तरफसे निराश होकर एक बातपर जोर लगाओ और 'हे नाथ! हे मेरे नाथ! हे मेरे स्वामी!' पुकारो। एक बात पकड़ लो कि हम अनाथ नहीं हैं, हम सनाथ हैं। भगवान् हमारे मालिक हैं, परमपिता हैं। यह सबसे बढ़िया उपाय है। हमारा भाव नहीं बनता तो परवाह मत करो। भगवान्‌को छोड़कर और कहाँ जाओगे? कौन सुननेवाला है?

भक्तका दु:ख भगवान् नहीं सह सकते। **पदार्थोंके अभावका, रुपये-पैसोंके अभावका, स्त्री-पुत्र आदिके अभावका दु:ख होता है तो भले ही रो-रोकर मर जाओ, भगवान् परवाह नहीं करते। परन्तु भगवत्सम्बन्धी बातका दु:ख हो तो वह भगवान्‌से सहा नहीं जाता।**

मैंने सोचा है, समझा है, विचार किया है कि साधकोंकी उन्नति कैसे हो, तो मेरेको भगवान्‌की कृपाके समान कोई देखने-सुननेमें आया नहीं। भगवान्‌की कृपासे ही होगा, हमारे बलसे नहीं होगा। श्रीगोस्वामीजी महाराजने भी लिखा है—

हौं हार्‌यौ करि जतन बिबिध बिधि अतिसै प्रबल अजै।
तुलसिदास बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै॥

(विनयपत्रिका ८९। ४)

*** *** ***

श्रोता—सुना है कि भगवान्‌का एक नाम लेनेसे जीवनभरके पाप नष्ट हो जाते हैं। ऐसा कौन-सा नाम है और कैसे लिया जाता है?

स्वामीजी—जैसे गजेन्द्र और द्रौपदीपर आफत आयी तो उन्होंने भगवान्‌को पुकारा, ऐसे आर्त होकर भगवान्‌को पुकारा जाय तो सब पाप नष्ट हो जाते हैं। तात्पर्य है कि ऐसी आफत आ जाय कि उसे दूर किये बिना हम रह नहीं सकें और उसे दूर हुए बिना चैन नहीं पड़े तथा एक भगवान्‌के सिवाय दूसरा कोई सहारा नहीं दीखे, तब 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारे तो सब ठीक हो जाता है।

श्रोता—कोई प्रेमी भक्त बनना चाहे तो क्या करे?

स्वामीजी—प्रेमी भक्त बनना है तो संसारका मोह छोड़ो। मोह छोड़ दो तो अपने-आप प्रेम जाग्रत् होगा। आप अवगुण छोड़ दो तो सद्‌गुण अपने-आप आयेंगे। अवगुण बनावटी हैं और गुण स्वत: भीतरसे उत्पन्न होते हैं। गुणोंमें जो शक्ति है, वह अवगुणोंमें नहीं हैं।

*** *** ***

परमात्मा सामान्य रूपसे सबमें एक समान हैं। उनकी प्राप्ति स्थिरतासे अर्थात् कुछ भी चिन्तन न करनेसे होती है। **आप जहाँ हैं, वहाँ ही स्थिर हो जायँ; क्योंकि परमात्मा वहाँ ही पूरे-के-पूरे हैं। आप जहाँ स्थिर होंगे, परमात्मामें ही स्थित होंगे।** क्रिया उसके लिये होती है, जो देश, काल,

वस्तु आदिसे दूर हो। जो सब देश, काल आदिमें परिपूर्ण हो, उसके लिये कुछ न करनेसे ही सिद्धि होती है। जो चिन्तन हो रहा है, उससे उपराम हो जायँ। उसमें न राग करें, न द्वेष करें। कुछ भी चिन्तन न करनेसे परमात्मामें ही स्थिति होगी, भले ही उसका भान न हो। चिन्तन करनेसे संसारमें स्थिति होती है। इसलिये आप जहाँ हैं, वहीं बाहर-भीतरसे चुप, शान्त रहनेका स्वभाव बना लें। यह बहुत सुगम और बहुत बढ़िया साधन है। इससे बहुत शान्ति मिलेगी और सब पाप-ताप नष्ट हो जायँगे।

चुप होनेसे शान्तिका अनुभव होता है। उस शान्तिका कोई कर्ता-भोक्ता नहीं है। उस शान्तिमें अहंकार न लगायें। मैं शान्त हूँ, बड़ी शान्ति है—ऐसा करनेसे अहंकार लग जाता है। अहंकार लगनेसे उस शान्तिका उपभोग होता है। उपभोग होनेसे शान्ति नहीं रहती, या तो नींद आ जाती है या चंचलता आ जाती है।

*** *** ***

बोध और भगवान्में प्रेम—ये दोनों होने चाहिये। संसारमें बोधकी बात बहुत विशेषतासे आती है, पर प्रेमकी बात उतनी नहीं आती। विचारपूर्वक देखा जाय तो दो बातें ही मुख्य हैं—कर्मयोग और भक्तियोग। ज्ञानयोग तो बीचमें छोटा-सा है। पर इसको बहुत बड़ा माना है!

जड़ पदार्थ केवल संसारकी सेवाके लिये हैं। उनका सम्बन्ध केवल संसारके साथ है। हमारा सम्बन्ध केवल परमात्माके साथ है। ये बातें आपको दृढ़तापूर्वक मान लेनी चाहिये। संसारमें तिनके-जितनी चीज भी हमारी नहीं है। सब चीजें सेवा-सामग्री हैं। हम परमात्माके अंश चेतन हैं। चेतनका भला जड़के द्वारा नहीं होगा, प्रत्युत जड़के त्यागसे होगा। जड़का त्याग हो जाय तो परमात्माकी प्राप्ति अपने-आप होती है। उसके लिये उद्योग करनेकी आवश्यकता नहीं है।

जीवकी मुक्ति होती नहीं है, यह मुक्त है। केवल जड़ताको महत्त्व देनेके कारण उसका अनुभव नहीं हो रहा है। इतनी साफ बात हरेक जगह आती नहीं! न शास्त्रमें, न व्याख्यानमें, न सत्संगमें!

*** *** ***

श्रोता—शान्त रहनेका स्वभाव बनानेका क्या तात्पर्य है?

स्वामीजी—कुछ भी चिन्तन न हो, न संसारका, न आत्माका, न परमात्माका। एक गहरी बात है कि जो सर्वव्यापक होता है, उसकी प्राप्तिके लिये क्रिया और पदार्थ नहीं होते। क्रिया करते ही हम उससे अलग होंगे। कुछ भी चिन्तन नहीं करेंगे तो परमात्मामें ही स्थिति होगी। इसलिये आप चलते-फिरते, उठते-बैठते हरदम शान्त रहनेका स्वभाव, आदत बना लें। जिसका स्वभाव एकान्तमें रहनेका है, वह सुगमतासे शान्त रह सकता है।

एक सच्ची बात और है कि संसार आजतक किसीको मिला ही नहीं, कभी मिलेगा ही नहीं और मिल सकता ही नहीं। परन्तु **परमात्मा सदा मिले हुए ही हैं। जो सब जगह परिपूर्ण हो, वह बिना मिले कैसे रहेगा?** इसलिये परमात्मा मिले हुए ही हैं—यह मान लो और चुप हो जाओ। सबको परमात्माकी प्राप्ति हुई है। सब मुक्त हैं। केवल आपने उसको स्वीकार नहीं किया है।

श्रोता—शान्त रहना ठीक है या भगवान्को पुकारना ठीक है?

स्वामीजी—दोनों ही ठीक हैं, बढ़िया हैं। किसीकी पुकारनेकी आदत होती है, किसीकी शान्त रहनेकी। जिसका जो स्वभाव हो, वह करे।

*** *** ***

श्रोता—*'हरे राम.....'* मन्त्रका क्या भाव है?

स्वामीजी—क्या है, यह भगवान् जाने। हमने तो ऐसा समझा है कि 'हरे' कहनेसे संसार हरा गया, संसारका अभाव हो गया और 'राम' कहनेसे परमात्माका भाव हो गया। राम और कृष्ण एक ही हैं। जिसने पहले रामका अवतार लिया, उसीने पीछे कृष्णका अवतार लिया। तात्पर्य यह हुआ कि संसार नहीं है, परमात्मा है। परमात्माके सिवाय कुछ है ही नहीं। ऐसे भावसे इस मन्त्रका जप करो तो बहुत लाभ होगा। आप एक दिन ही करके देखो, आनन्द हो जायगा!

श्रोता—एक बहन कह रही है कि बचपनमें मेरेसे कोई गलती हो गयी, उसकी सजा भी मिल गयी, पर मेरे दिलमें हलचल नहीं मिट रही है!

स्वामीजी—सजा मिल गयी तो पाप कट गया! मनमें पश्चात्ताप होनेसे गलती मिट जाती है। पर दुबारा वह गलती न करे। अब मेरे कहनेसे पन्द्रह-बीस मिनट राम-रामका जप कर लो, पाप नष्ट हो गया! भगवन्नाममें पाप नष्ट करनेकी असीम शक्ति है।

नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्हरणे हरेः।
तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जनः॥

'भगवान्के नाममें पापोंका नाश करनेकी जितनी शक्ति है, उतने पाप करनेमें पापी भी समर्थ नहीं है!'

कोई बड़े-से-बड़ा महात्मा हो, प्रेमी भक्त हो, तत्त्वज्ञ हो, जीवन्मुक्त हो, उससे कोई गलती नहीं हुई हो, यह बात है ही नहीं! भगवान्के द्वारा माफी होनेसे ही सब पाप नष्ट होते हैं। सब पाप भोगकर नष्ट हों, ऐसा नहीं होता। बिना माफ किये किसीका कल्याण होता ही नहीं!

सब पाप बनावटी हैं, निष्पाप स्वतः-स्वाभाविक है। अशुद्धि कृत्रिम है, शुद्धि स्वाभाविक है। जैसे, मनुष्य जंगलमें रहते हैं तो जंगल अशुद्ध हो जाता है। जंगल छोड़ देते हैं तो वह अपने-आप शुद्ध हो जाता है।

***   ***   ***

हम परमात्माके हैं, संसारके नहीं हैं—यह बात खास है। शरीर संसारके विभागमें है। संसारका विभाग संसारके लिये ही है—ऐसा मान लें तो कामना हो ही नहीं सकती। हमने संसारकी चीज ही संसारको दे दी तो फिर उसमें कामना कैसी? ऐसे ही भगवान्की चीज भगवान्की सेवामें लगा दी तो कामना कैसी? यह कामनाको छोड़नेका बड़ा सुगम उपाय है।

हमने ज्ञानयोगको मुख्य मान रखा था। पर ठीक विचार करनेसे मालूम हुआ कि खास चीज तो दो ही है—कर्मयोग और भक्तियोग। ज्ञानयोग तो बीचमें एक अड़ंगा है! एक शरीर है, एक आत्मा है। शरीरसे कर्मयोग और आत्मा (भगवान्के अंश)-से भक्तियोग हो गया। संसारसे अलग हो जाय, यह ज्ञानयोग है।

प्रेम केवल मनुष्य ही कर सकता है। दूसरी योनियाँ भोगयोनि हैं, वे प्रेम नहीं कर सकतीं। प्रेमका पान, अनुभव करनेवाले केवल भगवान् ही हैं। भगवान् केवल प्रेमके भोगी हैं। प्रेम ज्ञानसे विलक्षण है। ज्ञानमार्गके बहुत ऊँचे-ऊँचे ग्रन्थ हैं, पर उनमें प्रेमका वर्णन नहीं आता। उनमें ज्ञानको सर्वोत्तम माना गया है। ज्ञानको सर्वोत्तम मानें तो भगवान्का अड़ंगा रह जायगा, इसलिये उन्होंने भगवान्को कल्पित कहकर पिण्ड छुड़ाया! परन्तु यह बात ठीक बैठती नहीं। अगर भगवान् कल्पित हैं तो यह कल्पना किसकी है? कल्पक कौन है? इसका बढ़िया उत्तर नहीं मिलता। मैंने भी ज्ञानयोगकी पढ़ाई

की है। पर गीता पढ़ते-पढ़ते बिना विचार किये, अपने-आप भक्तिकी विशेषता आ गयी!

गीतामें कर्मयोग और ज्ञानयोगको लौकिक बताया है—**'लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा'** (गीता ३। ३) तथा क्षर (जगत्) और अक्षर (जीवात्मा)-को भी लौकिक बताया है—**'द्वाविमौ पुरुषौ लोके'** (गीता १५। १६)। परन्तु भगवान् दोनोंसे अन्य अर्थात् विलक्षण हैं—**'उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः'** (गीता १५। १७), **'यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः'** (गीता १५। १८), इसलिये भक्तियोग अलौकिक है। यह बात मैंने न किसी सन्तसे सुनी, न किसी टीकामें देखी! मुक्ति तो ईश्वरके बिना भी हो सकती है। ईश्वरमें तो प्रेमकी विलक्षणता, अलौकिकता है। वह प्रेम और जगह नहीं है।

ये बातें पढ़ाईके ग्रन्थोंमें नहीं आतीं। आपलोगोंसे तो यही कहनेकी मनमें आती है कि हम वास्तवमें परमात्माके हैं। यह वास्तविक चीज है।

***   ***   ***

श्रोता—हम गीता या भागवत पढ़ते हैं तो लगता है कि नामजप कम हो रहा है, जबकि हमारी नामजपमें, कीर्तनमें रुचि ज्यादा है। क्या करें?

स्वामीजी—नामजप, कीर्तन ज्यादा करो। उपासनामें रुचिकी प्रधानता है, करनेकी नहीं। अपनी रुचिकी प्रधानतासे करोगे तो आपको लाभ ज्यादा होगा। गुरुजीने अथवा किसीने कह दिया तो वैसा करनेसे लाभ नहीं होगा। इसलिये जिसमें रुचि है, वह ज्यादा करो।

श्रोता—यह जीव जब मुक्त है ही तो फिर बन्धनमें कैसे आ गया?

स्वामीजी—भोगोंकी इच्छासे बन्धनमें आ गया। मछली जलमें खुली विचरती है, पर जहाँ बंसीमें लगे हुए आहारको देखकर निगल लेती है, फँस जाती है! यही दशा जीवोंकी हो रही है! भोगोंमें सुख देखकर उसमें फँस जाते हैं। भोगोंसे करोड़ों-अरबों जन्मोंतक सुख नहीं मिल सकता। मिले भी कैसे? वे जड़ हैं, जीव परमात्माका अंश चेतन है। चेतनको जड़तासे शान्ति कैसे मिलेगी? अनन्त ब्रह्माण्डोंमें तिल-जितनी चीज भी आपकी नहीं है। आप वृथा दुःख पा रहे हो! आप आज ही भगवान्‌के सम्मुख हो जाओ तो आज ही मौज है!

सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं॥

(मानस, सुन्दर० ४४। १)

पापमें आपको पकड़नेकी ताकत नहीं है। आप पापको स्वीकार करते हैं, तब वह आपको पकड़ता है। आप स्वीकार न करो तो नहीं पकड़ सकता।

श्रोता—'अमृत-बिन्दु' पुस्तकमें आपने लिखा है कि किसी भी अवस्थामें राजी होना भोग है, भोगसे व्यक्तित्व नहीं मिटता। तो साधकको कैसे सावधान रहना चाहिये?

स्वामीजी—'हे नाथ! हे नाथ! हे प्रभो! हे मेरे स्वामी!' पुकारना चाहिये। हरदम भगवान्‌को पुकारते रहो। सब ठीक हो जायगा। आप भोगोंसे सुख चाहते हो। वह चाहना जबतक रहेगी, तबतक यह झंझट मिटेगा नहीं।

***   ***   ***

मनुष्यशरीर बड़ा दुर्लभ है। परन्तु **जब दुर्लभ चीज मिल जाती है, तब उसकी दुर्लभताका ज्ञान नहीं होता।** मनुष्यजन्मको वृथा नहीं खोना चाहिये। हरदम सावधान रहना चाहिये। सावधानी ही साधना है। मनुष्यजन्मका समय बड़ी तेजीसे जा रहा है। जितना समय चला गया, उतने तो मर ही गये।

अब कितना समय बाकी है, इसका पता नहीं है। ऐसा विचार करनेकी शक्ति मनुष्यमें ही है, पशुओंमें नहीं, देवताओंमें भी नहीं।

अपने विवेकसे इस बातको जान लेना चाहिये कि जितना सुख भोगा है, उतना भयंकर दुःख भोगना ही पड़ेगा। अपनी विवेकशक्तिसे मनुष्य सुखभोगकी रुचिका नाश कर सकता है। विवेकशक्तिको लेकर ही मनुष्यशरीरकी महिमा है। इस विवेकशक्तिको महत्त्व देकर अपना समय अच्छे-से-अच्छे काममें लगाओ। वह काम मत करो, जिसका नतीजा बुरा हो। ऐसा काम मत करो, जिससे किसीका भी अहित हो। **अपने सुखके लिये गायोंका, पशुओंका नाश करोगे, गर्भपात, सन्तति-निरोध करोगे तो इसका भयंकर दुःख पाना पड़ेगा....पड़ेगा....पड़ेगा....! किसी तरहसे बच सकते नहीं! याद रखना!** अगर मनुष्य विचार नहीं करेगा तो क्या भूत-प्रेत, पशु-पक्षी, वृक्ष आदि करेंगे?

मनुष्यके लिये दो बातें आवश्यक हैं—भगवान्‌को याद करना और दूसरोंकी सेवा करना। ये दो बातें जिसमें नहीं हैं, उसमें मनुष्यपना नहीं है।

***　　　***　　　***

अपनी दृष्टिसे जो बात मुझे सबके लिये बढ़िया लगती है, वह कहता हूँ। वेदोंकी, पुराणोंकी, शास्त्रोंकी, सन्त-महात्माओंकी दृष्टिसे भी जो बढ़िया बात है, वह कहता हूँ। उनसे विरुद्ध बात नहीं कहता। भूल हो सकती है, पर उसकी तरफ आप ध्यान न दें।

खास अपनी बात, अपने घरकी बात, अपनी व्यक्तिगत बात, अपनी खुदकी बात, अपनी गहरी बात, अपनी इज्जतकी बात, अपने लाभकी बात यह है कि हमारा सम्बन्ध भगवान्‌के साथ है, हम भगवान्‌के हैं। इसके समान बढ़िया बात कोई है ही नहीं! भगवान्‌ने भी कहा है कि जीवमात्र केवल मेरा ही अंश है—'**ममैवांशो जीवलोके**' (गीता १५। ७)। आपलोगोंसे यह प्रार्थना है कि भगवान्‌को अपना मानें। केवल इस बातको आप मान लें, फिर आपका सुधार स्वतः-स्वाभाविक होगा।

जरा सोचें, संसारमें भगवान्‌को माननेकी जरूरत ही क्यों पड़ी? जरूरत इसलिये पड़ी कि संसारमें अपने साथ सदा रहनेवाला कोई मित्र है ही नहीं! क्या शरीर, कुटुम्ब, रुपये, जमीन-जायदाद आदि सदा साथमें रहेंगे? सोच लो। भगवान्‌के सिवाय हरदम साथ रहनेवाला कोई दूसरा है ही नहीं। वे तो प्राणिमात्रके हृदयमें रहते हैं। विचार करें, गहरी नींदमें आपके साथ कौन रहता है? कोई साथमें नहीं रहता, पर भगवान् साथमें रहते हैं। इसका क्या पता? आप खुद कहते हो कि ऐसी गहरी नींदमें सोया कि मेरेको कुछ भी पता नहीं था। परन्तु 'कुछ भी पता नहीं था'—इस बातका तो पता था ही। इससे आपकी स्वयंकी सत्ता सिद्ध होती है। आप स्वयं भगवान्‌के अंश हैं। आपकी सत्तासे भगवान्‌की सत्ता सिद्ध होती है। नहीं तो भगवान्‌के बिना आप स्वयं कहाँसे आये? हम आपके माँ-बापको नहीं जानते, पर क्या आप बिना माँ-बापके हैं?

***　　　***　　　***

सच्चे हृदयसे 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। आपका बड़ा भारी कल्याण होगा, इसमें सन्देह नहीं है। हरदम 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं' कहते ही रहो। आपको बहुत लाभ होगा, इसमें सन्देह नहीं है। आपकी भावना न हो तो भी कहते रहो। आपकी भावना भी बन जायगी, चित्त भी लग जायगा, साधन भी बन जायगा, सब कुछ हो जायगा। मन न लगे तो भी कहना शुरू कर दो। इसमें आपकी क्या हानि होती है? क्या परिश्रम होता है? क्या तकलीफ होती है? इसमें बड़ा भारी फायदा है, आप करके देखो। एक-दो दिन भी तत्परतासे करके देखो तो वे दो दिन आपकी उम्रमेंसे विलक्षण दीखेंगे! 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं' कहते जाओ, आपका जीवन सफल

होगा। भगवान् कृपा करेंगे। आपके जीवनसे दूसरोंको भी आराम मिलेगा। आपके द्वारा सबका भला होगा। भगवान्‌की तरफ चलनेवाले पुरुषके द्वारा दुनियाका भला होता है—यह नियम है।

आप अन्धे होकर कहने लग जाओ कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं, और मुझे कुछ नहीं चाहिये'। बार-बार कहते ही रहो। उकताओ मत। आपको कोई पागल कहे तो डरो मत। यह मनुष्यजन्मका असली फल है!

दिवि वा भुवि वा ममास्तु वासो
नरके वा नरकान्तक प्रकामम्।
अवधीरितशारदारविन्दौ चरणौ
ते मरणेऽपि चिन्तयामि॥

'हे नरकासुरका वध करनेवाले प्रभो! आप मेरेको चाहे स्वर्गमें रखें, चाहे भूमण्डलपर रखें और चाहे यथेच्छ नरकमें रखें अर्थात् आप जहाँ रखना चाहें, वहाँ रखें। जो कुछ करना चाहें, वह करें। इस विषयमें मेरा कुछ भी कहना नहीं है। मेरी तो एक यही माँग है कि शरद् ऋतुके कमलकी शोभाको तिरस्कृत करनेवाले आपके अति सुन्दर चरणोंका मृत्यु-जैसी भयंकर अवस्थामें भी चिन्तन करता रहूँ; आपके चरणोंको भूलूँ नहीं।'

*** *** ***

अभी विचार आया कि क्या कहें, तो मनमें आयी कि आप स्वयं विचार करोगे, वह काम होगा; मेरे कहनेसे क्या होगा? **मैं तो अपनी मनचाही बात कहूँगा, पर आपका काम आपकी मनचाहीसे होगा। आप नहीं चाहोगे तो मेरा कहना कितनी देर करोगे? कर सकोगे नहीं। इसलिये आपको स्वयं सोचना चाहिये कि आपका कल्याण किस बातमें है। मेरे अथवा किसीके भरोसे नहीं रहना चाहिये।** आप स्वयं सोचो कि आपका उद्धारका रास्ता ठीक है क्या? अगर नहीं है तो उसको बदलो। आपके सिवाय कौन बदलेगा?

आप विचार करो कि जिस मानवशरीरकी महिमा शास्त्रोंमें जगह-जगह आयी है, जिसको बड़ा दुर्लभ बताया गया है, ऐसे मानवशरीरको पाकर क्या पशु-पक्षियोंकी तरह काम करना आपको उचित लगता है? दुर्लभ शरीरसे काम भी दुर्लभ करना चाहिये, जो दूसरे शरीरोंमें नहीं कर सकते! **देवता भी जिस कामको नहीं कर सकते, उस कामको आप कर सकते हैं और वही काम आपको करना चाहिये।** मैं भी विचार करके जो उचित समझूँगा, वही कहूँगा, तो क्या आपमें सोचनेकी शक्ति नहीं है? हमारा किस बातमें हित है और किस बातमें अहित है, यह सोचनेकी शक्ति आपमें है। आप विचार करोगे तो यह बात समझमें आ जायेगी कि अपना स्वार्थ सिद्ध करना बढ़िया है या दूसरेका हित करना बढ़िया है। अपने स्वार्थके लिये काम तो कुत्ता, गधा, सूअर, ऊँट आदि भी कर लेते हैं।

सूकर कूकर ऊँट खर बड़ पसुअन में चार।
तुलसी हरि की भगति बिन वैसे ही नर नार॥

आजसे ही आप स्वयं विचार करो कि जो काम आप करते हैं, क्या वह आपके लिये ठीक है? क्या उससे आपका कल्याण हो जायगा? अगर नहीं होगा तो इस गलतीका सुधार कौन करेगा? क्या मैं करूँगा? क्या दूसरा कोई करेगा? आपकी गलतीका सुधार आपको ही करना पड़ेगा। गीता कहती है—'**उद्धरेदात्मनात्मानम् नात्मानमवसादयेत्**' (गीता ६।५) 'अपने द्वारा अपना उद्धार करे, अपना पतन न करे।'

आप स्वयं विचार करोगे तो मेरी बातें मददगार होंगी, आपका हित करनेमें सहायता करेंगी। आप सावधानीके साथ अपने समयको अच्छे काममें लगाओगे तो अभी आपकी जैसी स्थिति है, इससे अच्छी स्थिति आपकी हो जायगी।

*** *** ***

स्वार्थ (अपना मतलब सिद्ध करनेके भाव)-का त्याग करनेकी बहुत आवश्यकता है। दीखता तो ऐसा है कि इससे हमारा काम सिद्ध हो जायगा, पर इससे पतन होता है, उत्थान नहीं। स्वार्थी आदमी जिनसे स्वार्थ सिद्ध होता है, उन सबका गुलाम हो जाता है। स्वार्थभावसे लड़ाई होती है। कुत्ते बड़े प्रेमसे खेलते हैं, पर रोटीका टुकड़ा डालो तो लड़ाई हो जायगी! जितने बड़े-बड़े पाप होते हैं, स्वार्थको लेकर ही होते हैं। स्वार्थवृत्ति नीच वृत्ति है, कुत्तों-गधोंकी वृत्ति है। स्वार्थीका रूप तो मनुष्यका है, पर है वह बिना सींग और पूँछका पशु ही!

अगर स्वार्थ न रखकर सबका हित किया जाय तो जीवन बड़ा शुद्ध हो जायगा। आपका तन, मन, धन, विद्या, बुद्धि, योग्यता आदि सबके हितमें, सबकी सेवामें लग जाय। जो प्राणिमात्रके हितमें रत होते हैं, वे परमात्माको प्राप्त होते हैं—**'ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः'** (गीता १२। ४)। परन्तु स्वार्थी आदमीका बार-बार जन्म-मरण होता है। जितने सन्त-महात्मा, श्रेष्ठ मनुष्य हुए हैं, उनके भीतर स्वार्थका त्याग तथा सबके हितका भाव था। अगर आपका भी ऐसा भाव बन जाय तो आप गृहस्थमें रहते हुए ही सन्त बन जायँगे! आपके हृदयमें आनन्दका समुद्र आ जायगा!

*** *** ***

जब हृदयमें वैराग्य होता है, भगवान्‌का प्रेम होता है, तब यह संसार कुछ कीमती नहीं दीखता। एक सन्त बैठे थे। किसीने जाकर कहा कि बाबाजी, अकेले ही बैठे हो! सन्तने कहा कि मैं तो अकेला नहीं था, तू आया तो अकेला हो गया! भगवान् हमारे पास थे। तुम आये तो भगवान् नहीं रहे। तुम्हारे आनेसे अकेले हुए। इस बातको दूसरा क्या समझे? समझ सकता ही नहीं।

आपके समान मैं नहीं बन सकता, पर मेरे समान आप बन सकते हो। मैं आपके समान इतनी चीजें कहाँसे इकट्ठी करूँ? पर आप सब कुछ छोड़ दो तो हमारे समान बन गये! हमारे समान बननेमें क्या जोर आया? कई वर्ष पहले मैं वृन्दावनमें रहा। कोई पूछनेवाला नहीं, कोई व्याख्यान नहीं! वहाँ एक साधुने मेरेसे कहा कि आपका अकेलेमें मन कैसे लगता है? मैंने कहा कि मेरा तो मन लगता है! एकान्तमें बड़ा आनन्द होता है! बुखारमें भी आनन्द आता है, मस्ती आती है! बुखारमें बुद्धिका विकास होता है। जितनी प्रतिकूलता होती है, उतना आनन्द आता है। थोड़ा-सा वैराग्य हो, थोड़ी-सी भगवान्‌में रुचि हो, भगवान् थोड़े अच्छे लगें तो आप देखो, आनन्द-ही-आनन्द होता है! समझमें आये या न आये, पर बात ऐसी है! जो कामनाओंमें फँसे हुए हैं, वे इस बातको समझ नहीं सकते।

ना सुख काजी पण्डिताँ, ना सुख भूप भयाँ।
सुख सहजाँ ही आवसी, तृष्णा-रोग गयाँ॥

वैरागी सन्तको देखकर आपको दया आयेगी कि बेचारेके पास घर भी नहीं है, स्त्री भी नहीं है, बालक भी नहीं है, अंटीमें दाम भी नहीं है, सिरपर छाता भी नहीं है, पैरमें जूती भी नहीं है, कपड़ा भी फटा हुआ है, बड़ा दुःखी है! पर उसके भीतर ऐसी मस्ती, ऐसा आनन्द है कि राजा-महाराजा भी उसके पास जाकर शान्ति पाते हैं! इसीलिये कहा है— ***'सदा दीवाली संत की,***

आठों पहर आनंद' !

*** *** ***

श्रोता—आजके इस युगमें चारों तरफ भ्रष्टाचार-ही-भ्रष्टाचार, बेईमानी-ही-बेईमानी छायी हुई है, ऐसी स्थितिमें हम सदाचारी और ईमानदार कैसे बने रह सकते हैं?

स्वामीजी—अपना विचार पक्का रखें तो बिलकुल रह सकते हैं। ऐसे समयमें सदाचारी, ईमानदार रहनेका माहात्म्य बहुत ज्यादा है। समय गिरनेसे साधककी उन्नति जल्दी होती है। जब सभी सद्‌गुणी होते हैं, तब अच्छे गुण धारण करनेनेमें आदमीको विशेष कष्ट नहीं होता। इसलिये उसका विशेष आदर नहीं होता। अतः आजके जमानेमें अच्छे आचरणोंका मूल्य बहुत ज्यादा है। कलियुगमें कल्याण बहुत जल्दी होता है, ऐसा शास्त्रोंमें आया है। इसलिये अपना विचार पक्का रखें।

जब हम संस्कृत पढ़ते थे, उस समय पढ़ाईमें जितनी कठिनता होती थी, उतनी आज नहीं होती। आज सुखपूर्वक पढ़ाई होती है। व्यवहारमें और पढ़ाईमें पहलेके बी०ए० जितने तेज थे, उतने आजके एम०ए० भी तेज नहीं हैं! आज संस्कृत, हिन्दी, अँग्रेजी आदिके विद्वान् पहले-जैसे नहीं हैं। कारण कि आज विद्यार्थीको आराम ज्यादा हो गया। इसलिये आज पहले-जैसे विद्यार्थी तैयार नहीं होते।

सुखार्थी चेत् त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी च त्यजेत् सुखम्।
सुखार्थिनः कुतो विद्या कुतो विद्यार्थिनः सुखम्॥

(चाणक्यनीति० १०। ३)

'यदि सुखकी इच्छा हो तो विद्याको छोड़ दे और यदि विद्याकी इच्छा हो तो सुखको छोड़ दे; क्योंकि सुख चाहनेवालेको विद्या कहाँ और विद्या चाहनेवालेको सुख कहाँ?'

हम अपने हाथोंसे रोटी बनाते थे। पूरा कपड़ा नहीं मिलता था। दूध नहीं मिलता था। बिजली नहीं थी। तेलके एक दीपकमें हम चार-पाँच विद्यार्थी पढ़ते थे। हरेक विद्यार्थी तेलका दीपक रख सके, इतना पैसा नहीं था। उस समय 'धातुरूपकल्पद्रुम' पुस्तक छह रुपयेमें मिलती थी, पर हम ले नहीं सके। अब वह पुस्तक देखनेको नहीं मिलती!

कठिनतासे जो चीज मिलती है, वह बहुत मूल्यवान् और बढ़िया होती है। इसलिये आज कठिनता होते हुए भी जो सच्चे हृदयसे साधन करेंगे, वे बड़े ऊँचे साधक बन सकते हैं, अच्छे महात्मा बन सकते हैं। इसलिये आप मनमें उत्साह रखो, हिम्मत मत छोड़ो।

उत्साहसम्पन्नमदीर्घसूत्रं क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदं च सिद्धिः स्वयं याति निवासहेतोः॥

(पंचतंत्र २। १२८)

'उत्साह रखनेवाले, थोड़े समयमें होनेवाले कार्यमें अधिक समय न लगानेवाले, कार्य करनेकी विधिको ठीक तरहसे जाननेवाले, व्यसनोंसे दूर रहनेवाले, शूरवीर, कृतज्ञ (उपकार करनेवालेका एहसान माननेवाले) तथा स्थायी मित्रता निभानेवाले—इन सात गुणोंवाले व्यक्तिको ढूँढ़कर सिद्धि (लक्ष्मी) अपने निवासके लिये स्वयं उसके पास आती है।'

जमाना जितना गिरता है, उतनी भजनकी कीमत होती है! मँहगी चीज भी अच्छे पुरुषोंको मिल जाती है! अचानक कोई-न-कोई सहायता करनेवाला मिल जाता है। एक साधु मिले थे। उन्होंने कहा कि मेरेसे प्रेम रखनेवाले बहुत गृहस्थ थे। परन्तु जब मैं बीमार हुआ, मुझे संग्रहणी हो गयी, उस समय मेरे सत्संगियोंने मुझे सहायता नहीं दी, प्रत्युत नये, अपरिचित आदमियोंने सहायता दी! ऐसे

उदाहरण मैंने देखे हैं। इसलिये भगवान्‌की कृपाका भरोसा रखो। मनमें कायरता मत लाओ। साधन करनेमें, पारमार्थिक उन्नति करनेमें उत्साह रखो। प्रह्लादजीके पास कितनी सुविधा थी? उनके सामने जितनी आफत थी, उतनी आपको कहाँ आती है! साधन-भजन करनेमें क्या आपके पास प्रह्लादजीके समान कष्ट आता है? प्रह्लादजी राक्षसोंके बीच रहकर भी भयभीत नहीं हुए। सच्चाईपर चलनेवाले आदमीको भय नहीं लगता।

भीतरसे अच्छे होनेपर भी बाहरसे दूसरेको राजी करनेके लिये गलत आचरण करना भी ठीक नहीं है, प्रत्युत कायरता है। इसलिये लोक-लिहाजमें आकर भी (कि कहीं दूसरा नाराज न हो जाय) गलत आचरण, खान-पान आदि मत करो। नम्रतापूर्वक साफ कह दो कि ऐसा हम नहीं कर सकते, हमारी कमजोरी है। अपनेमें पक्के रहो तो भगवान् जरूर सहायता करते हैं।

*** *** ***

श्रोता—माता-पिता कहते हैं कि तुम्हारे ग्रह भारी हैं, तुम यह अँगूठी पहन लो, पर हम कहते हैं कि महाराजजीके प्रवचनमें बात आती है कि भगवान्‌पर विश्वास रखना चाहिये। मुझे क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—माता-पिता कहें तो धारण कर लो, कोई बात नहीं। यह भी कह सकते हो कि मुझे इसकी जरूरत नहीं है। अपना विश्वास भगवान्‌पर रखो और निःशंक, निर्भय, निश्चिन्त रहो। अँगूठी कितनी ही बढ़िया हो, हीरा जड़ा हो, पर वह भगवान्‌के समान नहीं है।

भगवान्‌की जो कीमत है, वह कीमत किसी चीजमें नहीं है। भगवान्‌पर विश्वास रखो और उसमें पक्के बने रहो। हरदम 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। भगवान्‌से ऐसी प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं। ऐसी कृपा करो कि भूलूँ नहीं। मेरे माता-पिता, भाई-बन्धु आदि सब कुछ आप ही हो। मेरी सहायता करनेवाले, रक्षा करनेवाले भी आप हो। आपके बिना मेरा कौन है? आपको मैं नहीं कहूँगा तो किसको कहूँगा? आपको छोड़ करके कहाँ जाऊँगा? आपको कृपा करनी ही पड़ेगी। मैं सुख-आराम नहीं चाहता, मान-बड़ाई नहीं चाहता। मैं केवल आपका दर्शन, आपका प्रेम चाहता हूँ। संसारका सुख वास्तवमें दुःख ही है। संसारका लाभ वास्तवमें हानि ही है। मुझे वह सुख चाहिये, जो आपमें लगाये। जो आपसे विमुख कर दे, वह सुख किस कामका? जिससे आँख फूट जाय, वह अंजन क्या कामका? हे नाथ! ऐसी कृपा करो कि अब मैं आपको भूलूँ नहीं। इसके सिवाय मैं आपसे कुछ नहीं चाहता।'

*** *** ***

श्रोता—हम भजन तो करते हैं, पर मनमें शान्ति नहीं मिलती है। हमारे भजनमें कहाँ कमी है, बतायें।

स्वामीजी—आपमें त्याग नहीं है। अपनी बातोंको भीतरमें भरकर भजन करते हो। भीतरका त्याग करो तो शान्ति स्वतः ही आ जाय। ऐसा हो जाय, ऐसा मिल जाय—इस प्रकार अशान्ति आपने भीतरमें भर रखी है। भजन करते हैं भगवान्‌का, भीतर पकड़ा हुआ है संसार! अमुक चीज मिल जाय, ऐसा काम हो जाय, ऐसी परिस्थिति बन जाय आदि इच्छाएँ मनमें भरी पड़ी हैं। अपने मनको खाली कर दो कि हमें कुछ नहीं चाहिये।

जाहि बिधि राखे राम ताहि बिधि रहिये,
सीताराम सीताराम सीताराम कहिये।

मनचाही किसीकी नहीं होती। फिर चाहना करें ही क्यों? एक भी आदमी यह नहीं कह सकता कि हम जिसकी चाहना करते हैं, वह चीज मिल जाती है। **जो चीज मिलनेवाली है, वह मिलेगी ही, उसे रोकनेकी शक्ति किसीमें नहीं है। जो नहीं मिलनेवाली है, वह नहीं मिलेगी, चाहे रोकर मर जाओ!** तात्पर्य है कि चीजका मिलना आपकी चाहनाके अधीन नहीं है। चाहनाके कारण ही भजन करनेपर भी शान्ति नहीं मिलती।

*** *** ***

भगवान्‌को हर समय याद रखो। **भगवान्‌की याद एक प्रकाश है। अपने पास हरदम प्रकाश रखो, अँधेरा मत होने दो।** हरदम प्रार्थना करते रहो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। भगवान्‌को याद रखनेसे आपमें अपने-आप सद्‌बुद्धि पैदा होगी। सद्‌गुण-सदाचार आपके पासमें आ जायँगे।

दुःखकी बात है कि जो भारत पहले सबका गुरु रहा, आज वह सबका चेला हो रहा है! भारतमें अँधेरा आ गया है! देश बहुत पतनकी तरफ चला गया है! हिंसाकी बहुत प्रधानता हो रही है। सन्तति-निरोध आदि नाशके उपायोंको रक्षाके उपाय मान लिया है! माँ ही नहीं रहेगी तो हम कहाँसे आयेंगे? कृपा करके मातृशक्तिका नाश मत करो। आप इष्ट भगवान्‌का रखो, भगवान्‌को याद रखो और पालन अपने धर्मका करो। कैसी ही अवस्था हो, भगवान्‌का स्मरण रखो। भगवान्‌के स्मरणसे घर-के-घर, मोहल्ले-के-मोहल्ले शुद्ध हो जाते हैं!

*** *** ***

गीतामें भक्तिको सर्वोपरि बताया गया है। भक्तिके कई शास्त्र हैं, पर उनसे भी अधिक विलक्षणता गीतामें है। गीताने ज्ञानयोग और कर्मयोग दोनोंको साधन बताया है, और दोनोंको समकक्ष बताया है (गीता ५। ४-५)। ये दोनों लौकिक निष्ठाएँ हैं और भक्तियोग अलौकिक निष्ठा है। भक्तियोगमें भगवान्‌की शरणागति मुख्य है। शरणागतिको गीताने 'सर्वगुह्यतम्' अर्थात् सबसे अत्यन्त गोपनीय कहा है (गीता १८। ६४)।

मनुष्यकी यह एक कमी है कि वह किसी-न-किसीका सहारा चाहता है। अगर सहारा लेना ही हो तो भगवान्‌का लो। सुख-दुःखमें, अनुकूलता-प्रतिकूलतामें, सब समयमें एक भगवान्‌का ही सहारा रखो।

एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास।
एक राम घन स्याम हित चातक तुलसीदास॥

(दोहावली २७७)

एक सन्त थे—शरणानन्दजी महाराज। उनकी आँखें नहीं थीं। वे अकेले गंगाजीके किनारे चल रहे थे। अचानक किनारा गंगाजीमें ढह पड़ा। उसके साथ ही वे भी गंगाजीमें गिर गये। हाथसे लाठी छूट गयी। परन्तु उनके मनमें थोड़ा भी भय नहीं हुआ। उन्होंने अपने हाथ-पैर फैला दिये। दीखता कुछ था नहीं कि किस तरफ किनारा है, किस तरफ जाना है। लहरें उनको अपने-आप ही किनारे ले गयीं। किनारे लगते ही एक लकड़ी हाथमें आ गयी! उसे लेकर वे चल दिये!

जब शरणानन्दजीकी आँखें चली गयीं, तब उन्होंने विचार किया कि हमारे बिना आँख रह सकती हैं, तो हम भी आँखके बिना रह सकते हैं! हम आँखसे कमजोर नहीं हैं! आँखको हमारी जरूरत नहीं, तो हमें आँखकी जरूरत नहीं! ऐसा विचार आते ही उनमें मनोबल आ गया। फिर उनके मनमें कभी देखनेकी नहीं आयी। भगवान्‌के शरण होनेसे उनका नाम ही 'शरणानन्द' था। उनके जीवनमें

विचित्र-विचित्र घटनाएँ हुईं। अकेले रहते हुए भी वे निश्चिन्त रहे। एक गाँवसे दूसरे गाँव अकेले चले जाते थे!

एक भगवान्‌के चरणोंके शरण हो जाना—यह गीताकी सार बात है।

* * *   * * *   * * *

एकदम सच्ची बात है कि एक भगवान्‌के सिवाय कोई अपना नहीं है। आपके साथ रहनेवाली कोई चीज हो तो बताओ। कई कल्प बीत गये, पर भगवान् वैसे-के-वैसे हमारे साथ रहते हैं। वे कभी बूढ़े नहीं होते। अगर उन भगवान्‌को अपना मान लें तो क्या बाधा लगती है? **जिन लोगोंने भगवान्‌को अपना माना, वे सन्त-महात्मा हो गये।** आप प्रत्यक्ष देख लो, एक समय 'राधेश्याम-रामायण' घर-घरमें, गली-गलीमें पढ़ी जाती थी, पर आज उसका नामोनिशान नहीं है! 'ब्रह्मानन्द-भजनमाला' जगह-जगह इतनी फैली, पर उसका भी आज नामोनिशान नहीं है! परन्तु लगभग चार सौ वर्ष पहले लिखी गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजकी रामायण आज भी तेजीसे फैल रही है! गीताप्रेस छापते-छापते थक जाता है, फिर भी उसकी माँग मिटती नहीं! बड़े-बड़े नामी कवि हुए, पर गोस्वामीजी महाराजके समान नहीं। मीराबाईके पद अच्छे-अच्छे सन्त-महात्माओंकी सभामें बड़े आदरसे गाये जाते हैं। उनके पदोंमें कितनी विलक्षणता है!

शरीरको ठीक रखनेके लिये आप घी-दूध आदिका सेवन करते हैं, फिर भी वह साथमें नहीं रहता। परन्तु भगवान्‌के लिये क्या आपने घी-दूध आदिका सेवन किया? फिर भी वे सदा साथमें रहते हैं! भगवान्‌के समान सच्चा माँ, बाप, भाई, बन्धु, कुटुम्बी, बेटा, बेटी कोई नहीं है। उनके समान सच्चा स्नेही, कृपालु, विद्वान्, बलवान्, धनवान् कोई मिलेगा नहीं। उनके समान भी दूसरा कोई नहीं है, अधिक कैसे होगा? आप कैसे ही क्यों न हों, वे आपसे प्रेम करनेको, आपको अपनानेको तैयार हैं! वे आपकी लौकिक-पारलौकिक सब तरहकी इच्छाएँ पूरी करनेवाले हैं। उनको अपना मान लो, जान लो, स्वीकार कर लो—***'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई'***। दुःखकी बात है कि जो चीज आपके साथ रहनेवाली नहीं है, उसको तो आप अपना मानते हो और जो आपको कभी छोड़ते ही नहीं, उन भगवान्‌को अपना मानते ही नहीं!

* * *   * * *   * * *

श्रोता—हम अपनी विवेकशक्तिसे काम, क्रोध आदि दोषोंपर विजय प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं। कहते हैं कि भगवत्कृपासे ही इन दोषोंसे बचा जा सकता है। तो क्या हम यह अर्थ लगायें कि हम अपनी तरफसे प्रयास करना छोड़ दें?

स्वामीजी—कृपाका अथवा प्रारब्धका यह अर्थ है ही नहीं कि अपनी तरफसे कुछ न करे। इसका अर्थ है कि चिन्ताको छोड़ दो। अपना कर्तव्य छोड़नेमें इसका अर्थ कभी है ही नहीं। अपनी तरफसे खूब उत्साहसे, तत्परतासे उद्योग करो, पर होगा भगवान्‌की कृपासे। चिन्ता मत करो। प्रारब्धका भी यही तात्पर्य है कि अपना उद्योग पूरा करो, पर चिन्ता मत करो।

भगवान्‌की कृपासे होगा—इसका मतलब है कि चिन्ता मत करो। अपनी ओरसे उद्योग पूरा करनेपर भी काम नहीं हुआ है तो भगवान्‌की कृपा माननेमें हमारी कमी रही है। कृपा करो कृपानाथ! सत्संगकी बातोंको समझनेकी चेष्टा करो और सार चीजको ग्रहण करो।

श्रोता—इन दोषोंके सामने हमारी विवेकशक्ति शिथिल क्यों हो जाती है?

स्वामीजी—कारण कि आपने भोगोंको प्रबल मान लिया है। वास्तवमें विवेक प्रबल है, भोग

प्रबल नहीं हैं। जैसे आपने बीड़ी-सिगरेट पीनेकी आदत डाल दी, अब आप उसको छोड़ नहीं सकते। यह बीड़ी-सिगरेटकी शक्ति नहीं है, प्रत्युत आपका व्यसन है। भोगोंमें लगे रहनेसे वे प्रबल दीखने लग गये। अब विवेक कैसे काम करे? भोग भोगने और रुपयोंका संग्रह करनेसे कितनी हानि होती है, उस तरफ आप देखते ही नहीं!

श्रोता—चोटी रखनेसे कोई आध्यात्मिक लाभ भी है या यह केवल हिन्दू होनेका प्रतीक ही है?

स्वामीजी—चोटीका पितृलोकके साथ सम्बन्ध है। चोटी नहीं होगी तो आपके माँ-बापको पिण्ड-पानी नहीं मिलेगा! शास्त्रोंमें लिखा है कि स्नान, दान, जप, होम, सन्ध्या और देवपूजनके समय चोटीमें गाँठ अवश्य लगानी चाहिये। चोटीके बिना किये गये ये पुण्यकर्म निष्फल हो जाते हैं—

स्नाने दाने जपे होमे सन्ध्यायां देवतार्चने।
शिखाग्रन्थिं सदा कुर्यादित्येतन्मनुरब्रवीत्॥
विना यच्छिखया कर्म विना यज्ञोपवीतकम्।
राक्षसं तद्धि विज्ञेयं समस्ता निष्फला क्रियाः॥

यह कलियुगकी महिमा है कि कोई अच्छा काम नहीं हो। अधर्म-ही-अधर्म हो, धर्म हो ही नहीं; क्योंकि कलियुग अधर्मका मित्र है—'**कलिनाधर्ममित्रेण**' (श्रीमद्भा० १। १५। ४५)। ये सब कलियुगके चेले हैं!

***   ***   ***

शरीर-मन-वाणीसे दुर्गुण-दुराचारका त्याग कर दें तो विश्वमात्रकी सेवा होती है और निष्काम हो जायँ तो अपनी सेवा होती है। हम जितनी कामना, आसक्ति, अभिमान रखते हैं, उतना अपना पतन होता है। जितने पाप होते हैं, सब स्वार्थके कारण ही होते हैं। इसलिये अगर आप अपना भला चाहते हैं तो स्वार्थ और अभिमानका त्याग करके दूसरोंका हित करो। **अपना जितना स्वार्थ चाहते हैं, उतना ही अपना पतन होता है।** इसका कारण यह है कि स्वयं चेतन होते हुए भी आपने जड़ताको महत्त्व दे दिया।

जितने भी सन्त-महात्मा हुए हैं, उन्होंने अपने स्वार्थका त्याग किया है। बद्रीनारायणसे एक सन्त आये थे। उन्होंने एक बात बतायी कि वहाँ एक साधुकी अँगुलीमें पीड़ा हो गयी। पासमें ही अस्पताल था। उनसे कहा कि अस्पताल जाकर कहो तो वे मलहम-पट्टी कर देंगे। उस साधुने कहा कि अँगुलीकी पीड़ा तो मैं सह लूँगा, पर उनसे कहूँ कि तुम मलहम-पट्टी कर दो, यह मेरेसे सहा नहीं जायगा! यह बात सुननेपर मेरेपर असर पड़ा कि यह असली साधु है। अपने स्वार्थकी बात कैसे कही जाय कि तू मेरा यह काम कर दे!

ज्यों-ज्यों स्वार्थभाव करते हैं, त्यों-त्यों बुद्धि भ्रष्ट होती है और ज्यों-ज्यों त्याग करते हैं, त्यों-त्यों बुद्धिमें प्रकाश होता है। **मेरा कुछ नहीं है और मुझे कुछ नहीं चाहिये—यह भाव जिसका होगा, वह सन्त-महात्मा हो जायगा।** वस्तुएँ भी खूब आयेंगी! यह एक कायदा है कि आपके भीतर ज्यों-ज्यों त्याग होगा, त्यों-त्यों वस्तुएँ अपने-आप आयेंगी। घाटा सब मिट जायगा और आनन्द हो जायगा! आप करके देख लो।

***   ***   ***

भगवान्‌की प्रसन्नता इस बातमें है कि हम उनको याद रखें—'**अच्युतः स्मृतिमात्रेण**'। उनको याद रखनेमात्रसे एक विलक्षणता आती है, बुद्धिका विकास होता है, आगेका साधन स्वतः पैदा होता है!

आगे कैसे चलना चाहिये, क्या करना चाहिये, कैसे करना चाहिये, इसका अपने-आप प्रकाश मिलता है। मनुष्यको आश्चर्य आता है कि हम तो कुछ जानते नहीं थे, फिर इतनी विलक्षणता हमारेमें कैसे आयी! ऐसी विलक्षणता अपने-आप आयेगी और आप आगे बढ़ते चले जायँगे। केवल भगवान्‌का आश्रय ले और उनको भूले नहीं तो अपने-आप सब काम ठीक होता है। हम भगवान्‌के हैं—इसको याद करनेमात्रसे रास्ता अपने-आप साफ होता है।

सज्जनो, प्यारे भाई-बन्धुओ, स्नेहियो, भगवान्‌को याद करो और एक ही प्रार्थना करो कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। फिर सब काम अपने-आप ठीक हो जायगा। जैसे केवल माँके दूधके ही आश्रित रहनेवाले छोटे बालकका सब काम माँको ही करना पड़ता है। उसका काम करनेमें माँको आनन्द आता है। वह बीमार हो जाय तो दवाई भी माँको खानी पड़ती है। दवाई माँ खाती है, असर बालकको होता है! ऐसे ही जो भक्त सर्वथा भगवान्‌के ही आश्रित रहता है, उसका सब काम भगवान् करते हैं। उसका काम करनेमें भगवान्‌को आनन्द आता है!

अर्जुनने भगवान्‌से प्रार्थना की कि आप निश्चय करके उस एक बातको कहिये, जिससे मेरा कल्याण हो जाय—**'तदेकं वद निश्चित्य येन श्रेयोऽहमाप्नुयाम्'** (गीता ३। २), तो भगवान्‌ने कहा कि एक मेरी शरणमें आ जा—**'मामेकं शरणं व्रज'** (गीता १८। ६६)। जैसे माँ बालककी चिन्ता करती है, ऐसे शरणागत भक्तकी चिन्ता भगवान् करते हैं।

जिसने जन्म दिया है, वह चिन्ता करे। हम चिन्ता करके अपने सिरपर बोझ क्यों उठायें? एक आदमीने विचार किया कि ऊँटपर बोझ ज्यादा हो गया, तो उसने गठरी उठाकर सिरपर रख ली। सामनेवालेने पूछा कि बोझ सिरपर क्यों? वह बोला कि ऊँटपर बोझ ज्यादा हो गया, इसलिये सिरपर रख लिया। उसने पूछा कि तू किसपर बैठा है? वह बोला कि मैं तो ऊँटपर बैठा हूँ। सामनेवाला बोला कि ऐसा भी कोई मूर्ख होता है! ऊँटपर तो रत्तीभर भी फर्क नहीं पड़ा, उल्टे तू बीचमें पिस रहा है! ऊँटपर बैठा हुआ आदमी तो अपनी पगड़ी भी उतारकर ऊँटपर रख देता है कि इतना बोझ भी सिरपर क्यों! इसी तरह आपने व्यर्थमें तरह-तरहके बोझ, चिन्ताएँ अपने सिरपर उठा रखी हैं। उनको भगवान्‌पर छोड़कर निश्चिन्त हो जाओ।

चिन्ता दीनदयाल को, मो मन सदा अनन्द।
जायो सो प्रतिपालसी, रामदास गोबिन्द॥

आप जितने निश्चिन्त, प्रसन्न, आनन्दमें रहोगे, उतनी आपकी स्वत:-स्वाभाविक उन्नति होगी।

*** *** ***

भगवान् मीठे लगें, अच्छे लगें—यहाँसे भक्ति शुरू होती है। जबतक संसार अच्छा लगता है, तबतक भक्ति शुरू नहीं होती। जैसे लोभी आदमीको रुपये प्यारे लगते हैं, कामीको स्त्री प्यारी लगती है, ऐसे भगवान् प्यारे लगें, तब भक्ति शुरू होती है। गोस्वामीजीने रामायणकी समाप्तिपर एक दोहा लिखा है—

कामिहि नारि पिआरि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरंतर, प्रिय लागहु मोहि राम॥

(मानस, उत्तर० १३० ख)

तात्पर्य है कि कामीको जैसे स्त्रीका रूप अच्छा लगता है, ऐसे मेरेको धनुर्धारी रघुनाथजीका रूप प्यारा लगे और लोभीको जैसे रुपयोंकी गिनती अच्छी लगती है, ऐसे मेरेको राम-नामका जप

प्यारा लगे। कामीको स्त्री और लोभीको रुपये निरन्तर प्यारे नहीं लगते, पर मेरेको भगवान्‌का रूप और नामजप निरन्तर प्यारे लगें। यह भक्ति है।

भगवान्‌के नाममें प्रियता होनी चाहिये। नाममें मिठास आनेसे जो लाभ होता है, पापोंका नाश होता है, वह केवल गिनतीसे नहीं होता।

*** *** ***

श्रोता—संसारमें भगवान्‌को कैसे देखा जाय?

स्वामीजी—पहले आप इस बातको सोचें कि हमें जीवनमें क्या करना है? हमें परमात्माकी प्राप्ति ही करनी है, ऐसा विचार होनेपर ही यह बात ठीक समझमें आयेगी। **जबतक अपना विचार परमात्मप्राप्तिका नहीं होगा, तबतक बातें कहने-सुननेसे काम नहीं होगा, कोई उपाय काम नहीं देगा। परमात्मप्राप्तिकी जोरदार अभिलाषा होनेपर ही उपाय काम देते हैं, नहीं तो बढ़िया-से-बढ़िया उपाय भी काम नहीं देगा।** विचार करके देखो, भगवान्‌के कई अवतार हो गये, कई अच्छे-अच्छे सन्त-महात्मा हो गये, पर अभीतक हमारा कल्याण नहीं हुआ! इसका कारण यह नहीं है कि भगवान्‌के अवतारोंमें अथवा सन्त-महात्माओंमें कोई कमी थी। वास्तवमें हमारी ही इच्छा जोरदार नहीं थी। यह मूल बात है। आदमी बिना भूखके भोजन नहीं कर सकता। भोजन बहुत बढ़िया हो, पर भूख नहीं हो तो उसका क्या करें!

यह विचार करें कि संसार कहाँसे पैदा हुआ है? शास्त्रोंकी दृष्टिसे संसार परमात्मासे ही पैदा हुआ है, परमात्माकी शक्तिसे ही स्थिर है और परमात्मामें ही लीन हो जायगा। अपनी उत्कट अभिलाषाके बिना आप शास्त्रकी बात सीख सकते हो, जान सकते हो। परन्तु साधककी दृष्टिसे देखा जाय तो संसार अहम्‌से अर्थात् 'मैं हूँ' से पैदा हुआ है। 'मैं हूँ' में जहाँ भोग भोगनेकी वासना होती है, वहाँसे संसार पैदा हुआ है। वह वासना जितनी तरहकी होगी, उतनी तरहका संसार दीखेगा। अब अगर संसारको मिटाना हो तो अहम्‌को मिटाओ।

दार्शनिक पढ़ाई मैंने करके देखी है, उससे काम नहीं होता। जैसे मनुष्य धनका संग्रह करता है, ऐसे ही **पढ़ाई करनेसे बुद्धिमें तरह-तरहकी बातोंका संग्रह हो जाता है, पर तत्त्वज्ञान नहीं होता।** पढ़ाई करनेसे बातें सीख जाओगे, दूसरोंको पढ़ा दोगे, व्याख्यान दे दोगे, शंकाओंका समाधान कर दोगे, पर अपने भीतरकी गाँठ नहीं खुलेगी। ज्यों पढ़ाई अधिक करोगे, त्यों गाँठ अधिक गहरी होती जायगी! उल्टे परमात्मप्राप्तिमें बाधा लग जायगी! **पढ़े-लिखे, नामी विद्वान् आदमी तो कई मिल जायँगे, पर उनमें साधक मिलना कठिन है।** ऐसा मैंने खूब विचार करके देखा है। उनमें यह वहम होता है कि हम जानकार हैं! वास्तवमें जानकारी बढ़ानेसे बोध नहीं होगा, प्रत्युत भीतरकी लगनसे बोध होगा। जितनी लगन होगी, उतना लाभ होगा, इसमें सन्देह नहीं है।

बोध होनेपर भी काम-क्रोध नष्ट नहीं होते—ऐसी बात पुस्तकोंमें आती है! परन्तु ऐसा अनुभव नहीं होता। जिन महापुरुषोंने अनुभव किया है, उनके अनुसार काम-क्रोध बिल्कुल ही नष्ट हो जाते हैं। काम-क्रोध तो साधकके भी नष्ट हो जाते हैं। गीताने साफ कहा है कि काम, क्रोध और लोभ—इन तीनोंसे रहित होकर अपने कल्याणका आचरण करनेवाले मनुष्यकी मुक्ति होती है—

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥
एतैर्विमुक्तः कौन्तेय तमोद्वारैस्त्रिभिर्नरः।

आचरत्यात्मनः श्रेयस्ततो याति परां गतिम्॥

(गीता १६। २१-२२)

'काम, क्रोध और लोभ—ये तीन प्रकारके नरकके दरवाजे जीवात्माका पतन करनेवाले हैं, इसलिये इन तीनोंका त्याग कर देना चाहिये। हे कुन्तीनन्दन! इन नरकके तीनों दरवाजोंसे रहित हुआ जो मनुष्य अपने कल्याणका आचरण करता है, वह परम गतिको प्राप्त हो जाता है।'

जितने दार्शनिक ग्रन्थ हैं, उनमें गीता सबसे श्रेष्ठ है। गीताको समझना हो तो पहले शास्त्रोंको न पढ़कर गीता पढ़ो। शास्त्रोंको पढ़कर गीता पढ़ोगे तो गीताका अर्थ समझमें नहीं आयेगा। आप गीता और श्रीरामचरितमानस पढ़ो तो आपको लाभ होगा। असली लाभ तब होगा, जब इनके मर्मको ठीक तरहसे जाननेवालोंके द्वारा पढ़ो। उनके लिखे हुए लेख पढ़ो।

जबतक रुपये अच्छे लगते हैं, स्त्री अच्छी लगती है, तबतक बोध नहीं हुआ। बोध होनेपर ये फीके लगने लग जाते हैं। जैसे बचपनमें खिलौने बड़े अच्छे लगते हैं, पर बड़े होनेपर उनमें आकर्षण नहीं रहता, ऐसे ही पारमार्थिक बातोंका रस मिलनेपर चित्त भोगोंमें नहीं खिंचेगा। वह रुपये पासमें रखे चाहे न रखे, पर रुपयोंका महत्त्व उसकी बुद्धिमें नहीं होगा। **जबतक रुपयोंका और भोगोंका महत्त्व चित्तमें जमा हुआ है, तबतक कितनी ही बातें बनाओ, मुक्ति नहीं होगी, कल्याण नहीं होगा।**

***   ***   ***

श्रोता—कीर्तन करनेसे क्या लाभ होता है? और न करनेसे क्या नुकसान होता है?

स्वामीजी—नुकसान तो सदा ही हो रहा है! नुकसानके लिये कुछ करनेकी जरूरत नहीं है। पतनकी तरफ दुनिया अपने-आप ही जा रही है। कलियुगमें कीर्तन करनेका माहात्म्य सबसे अधिक बताया गया है। कलियुगमें केवल भगवान्‌के कीर्तनसे उद्धार हो जाता है—'**कलौ तद्धरिकीर्तनात्**' (श्रीमद्भा० १२। ३। ५२)। कीर्तन करनेमात्रसे मनुष्य परमात्माको प्राप्त हो जाता है—'**कीर्तनादेव कृष्णस्य मुक्तसङ्गः परं व्रजेत्**' (श्रीमद्भा० १२। ३। ५१)। भगवन्नाम और सत्संग—इन दोकी महिमा शास्त्रोंमें बहुत ज्यादा कही गयी है।

एक जगह बैठकर मनुष्य भगवान्‌के नामका कीर्तन करता है तो घर-के-घर, मोहल्ले-के-मोहल्ले शुद्ध हो जाते हैं, और उसकी आवाज चौदह भुवनोंसे होती हुई ब्रह्मलोकतक पहुँचती है! ऊँचे स्वरसे कीर्तन किया जाय तो उसका लोगोंपर विलक्षण प्रभाव पड़ता है। नामजपसे संकल्प-विकल्प उतने बन्द नहीं होते, जितने कीर्तनसे बन्द होते हैं। कीर्तनसे बहुत ज्यादा शुद्धि होती है और खराब परमाणु नष्ट हो जाते हैं।

भगवान्‌के नामका जप करनेसे, ध्यान करनेसे, चिन्तन करनेसे दुनियाका बड़ा भारी भला होता है। हिमालयमें नर-नारायण आदि अनेक ऋषि-मुनि चुपचाप जप-ध्यान करते हैं तो उससे संसारमात्रमें शान्ति, प्रसन्नता फैलती है। सन्त-महात्माओंके पास रहनेसे, उनका सत्संग करनेसे बहुत फायदा होता है। जहाँ दो आदमियोंकी आपसमें लड़ाई होती हो, वहाँ अगर क्रोधी स्वभाववाला आदमी चुपचाप आकर खड़ा हो जाय तो लड़ाई बढ़ जायगी; परन्तु कोई सन्त-महात्मा आकर खड़ा हो जाय तो लड़ाई शान्त हो जायगी। **जो दुर्गुण-दुराचार करते हैं, दुर्व्यसन करते हैं, उनके द्वारा दुनियाका बड़ा भारी नुकसान होता है।**

कीर्तन करनेसे प्रत्यक्षमें शान्ति मिलती है। नामजप करनेवाले, कीर्तन करनेवाले, भगवान्‌में मन

लगानेवालेकी वाणीमें एक विलक्षण शक्ति होती है, जिसका दूसरेपर असर पड़ता है। जिनको तत्त्वज्ञान प्राप्त हो गया है, उनकी बातोंमें एक विलक्षण शक्ति रहती है। वह शक्ति केवल विद्वत्तासे नहीं आती।

प्रत्यक्ष बात है कि आम, नींबू आदिके आचारका नाम लेनेका इतना असर पड़ता है कि मुँहमें पानी आ जाता है! ऐसे ही भगवन्नाम लेनेका बहुत विलक्षण असर पड़ता है।

*** *** ***

श्रोता—भगवान्‌के शरण होनेके लिये हमलोगोंको क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—भगवान्‌के शरण होनेमें बाधक है—अहंकार। मैं भी कुछ कर सकता हूँ—ऐसा अभिमान शरण होनेमें बाधक होता है। इस अभिमानको छोड़कर 'हे नाथ! हे मेरे नाथ! मैं आपके शरण हूँ' कहकर शरण हो जाओ। शरणागत होनेपर भगवद्-रहस्यकी बातें मनमें स्वत:-स्वाभाविक पैदा होती हैं।

मैंने एक सन्त (शरणानन्दजी महाराज)-का जीवन देखा। गुरुके कहनेपर वे भगवान्‌के शरण हो गये। शरण होनेमात्रसे उनमें बहुत विलक्षणता आयी। वे पढ़े-लिखे नहीं थे, पर शास्त्रोंकी विलक्षण-विलक्षण बातें उनके अन्त:करणमें स्वत: आ गयीं। गीताका गहरा भाव आ गया। तात्पर्य है कि भगवान्‌के चरणोंके शरण होनेसे उनकी कृपासे जो बात आती है, वह अपने उद्योगसे नहीं आती।

जो जाको शरणो गहै, ताकहँ ताकी लाज।
उलटे जल मछली चले, बह्यो जात गजराज॥

जैसे माँ बालकका सब काम राजी होकर करती है, ऐसे ही जो भगवान्‌के शरण हो जाता है, उसका सब काम भगवान् करते हैं और करके राजी होते हैं।

*** *** ***

श्रोता—गृहस्थमें रहते हुए, बाल-बच्चोंके बीचमें रहते हुए, अपनी आजीविकाका काम करते हुए हम अपना कल्याण कर सकते हैं क्या?

स्वामीजी—कर सकते हो, पर भीतरका भाव बदलना पड़ेगा। अगर साधुओंका ही कल्याण होता तो मैं भी दो-चार, पाँच-दस साधु तो बना सकता था! **वास्तवमें साधु हो या गृहस्थ, कल्याण भाव बदलनेसे होगा।**

मनुष्यजन्म कल्याणके लिये ही है। मनुष्य कहो चाहे साधक कहो, ये पर्यायवाचक शब्द हैं। मनुष्यमात्र साधक है, परमात्मप्राप्तिका अधिकारी है। सब-के-सब मनुष्य परमात्मप्राप्तिमें स्वतन्त्र हैं, योग्य हैं। मेरी धारणा यह नहीं है कि आपमें बुद्धि कम है, समझ कम है। आप सबमें समझ है, पर आप उपयोगमें नहीं लेते हैं।

मूलमें सभी मनुष्य मनुकी सन्तान हैं। इसलिये सभी मनुष्य एक हैं। मुसलमान, ईसाई, यहूदी, पारसी भी दूसरे नहीं हैं। परन्तु पीढ़ियाँ दूर पड़ गयीं, उनके व्यवहार अलग-अलग हो गये, इसलिये पता नहीं लगता। वास्तवमें सभी हमारे भाई-बन्धु, कुटुम्बी हैं। परन्तु यह भाव हिन्दुओंमें जितनी जल्दी पनप सकता है, उतना दूसरोंमें नहीं। कारण कि उनमें हिन्दुओंके प्रति द्वेष हो गया! यह नीयतकी खराबी है।

आपका भीतरसे यह भाव होना चाहिये कि सब सुखी हो जायँ, सब नीरोग हो जायँ, सबका कल्याण हो, कभी किसीको किंचिन्मात्र भी दु:ख न हो—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥

जो वास्तवमें कल्याणका भागी है, उसके द्वारा किसीका नुकसान नहीं होता। जो सबका भला चाहता है, उसको भगवान् मिलते हैं। भगवान् हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहूदी आदि सबके हैं, एक-दोके नहीं हैं। आप हृदयमें सबके हितका विचार रखो तो आप गृहस्थमें रहते हुए महात्मा हो जाओगे।

हमारे देखते-देखते लोगोंमें राग-द्वेष बहुत ज्यादा बढ़ गया है! आपसमें पहले-जैसा स्नेह नहीं रहा। स्त्री-पुरुष दोनों मिलकर एक ही हैं, पर उनमें भी तलाक होने लग गया! पति-पत्नीका भाव ही नहीं रहा! परिवार-नियोजनसे बहुत नुकसान हुआ है। इससे आचरण भ्रष्ट हो गया, मर्यादा नष्ट हो गयी, व्यभिचार बढ़ गया, भ्रूण-हत्या होने लग गयी! परिवार-नियोजन तो ऊपरसे बहानेबाजी है, भीतरसे केवल भोग भोगनेकी इच्छा है। मनुष्य कल्याणसे बहुत दूर चला गया है!

भोग भोगनेकी इच्छा और रुपये इकट्ठे करनेकी इच्छा—इन दो इच्छाओंने मनुष्योंका नाश कर दिया है! इच्छा करनेसे रुपये मिल जायँगे—यह बात है ही नहीं.....है ही नहीं.....है ही नहीं! धनकी प्राप्तिमें इच्छा, उद्योग और प्रारब्ध—ये तीन चीजें होनी चाहियें। परन्तु परमात्माकी प्राप्तिमें केवल जोरदार इच्छा होनी चाहिये, उद्योग और प्रारब्धकी कोई जरूरत नहीं। केवल चाहनामात्रसे कल्याण होता है।

*** *** ***

श्रोता—संसारके विषयोंमें तो हमारा मन बहुत जल्दी एकाग्र हो जाता है, पर भगवान्में हमारा मन चाहते हुए भी एकाग्र नहीं होता! इसके लिये क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—प्रभुसे प्रार्थना करनी चाहिये। प्रार्थना बहुत बढ़िया चीज है। आर्त होकर, दुःखी होकर प्रार्थना करो तो तत्काल काम होता है।

सच्चे हृदय से प्रार्थना जब भक्त सच्चा गाय है।
तो भक्तवत्सल कान में वह पहुँच झट ही जाय है॥

आपको विश्वास हो न हो, यह हमारे हाथकी बात नहीं है; परन्तु ऐसी **सच्ची बात है कि बीसों-पचासों वर्षोंतक मेहनत करनेसे जो काम नहीं हुआ, वह प्रार्थनासे एक दिनमें हो गया!** सच्चे हृदयसे प्रार्थना करनेपर ऐसा हुआ है, और होता है। भक्तोंका चरित्र पढ़नेसे, भगवान्‌की कथा सुननेसे हृदय सच्चा होता है।

जो संत ईश्वरभक्त जीवनमुक्त पहले हो गये।
उनकी कथाएँ गा सदा मन शुद्ध करने के लिये॥

भक्तोंका चरित्र पढ़नेसे बहुत फायदा होता है। यह सन्तोंके द्वारा देखी हुई, अनुभव की हुई बात है।

आवश्यकता आपके हृदयकी पुकारकी है। हृदयसे बार-बार भगवान्से कहो कि 'हे नाथ! हे मेरे नाथ! मेरा चित्त आपके चरणोंमें लग जाय'। इससे चित्त जरूर लगेगा, इसमें सन्देह नहीं है। सन्तोंने यह अनुभव करके देखा है।

*** *** ***

श्रोता—संसारके विषय तो हमें प्रिय लगते हैं, पर भगवान्‌के साथ हमारा प्रेम नहीं हो रहा है, क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—मूलमें तो आप परमात्माके अंश हो, पर अभ्यास संसारका ज्यादा हो गया है। इसलिये संसार ज्यादा प्रिय लगता है। भगवान् प्रिय लगने लग जायँ तो भक्ति शुरू हो जायगी। जिनका भगवान्में प्रेम है, उनके द्वारा भक्तोंके चरित्र, भगवान्की कथाएँ सुनो तो भगवान्में प्रेम होगा। कम-से-कम इतनी बात याद कर लो कि हम भगवान्के हैं और भगवान् हमारे हैं। भगवान् हमारे परमपिता हैं और उनके हम अंश हैं।

आप जहाँ हैं, वहाँ ही परमात्माकी प्राप्ति करनी चाहिये। इसके लिये साधु बननेकी जरूरत नहीं है। गीताके अनुसार आप जिस आश्रममें हैं, वहीं परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी। भगवान्के साथ सबका सीधा सम्बन्ध है। कारण कि सब भगवान्के अंश हैं।

किसीके भी अवगुण नहीं कहने चाहिये। जैसे भगवान्का नाम लेनेसे भगवान्के साथ सम्बन्ध हो जाता है, ऐसे ही अवगुण कहनेसे अवगुणोंके साथ सम्बन्ध हो जाता है। सन्तोंने पाँच चीजें याद रखनेके लिये कहा है—मीठा बोलना, नम्रता रखना, दूसरेके अवगुणोंको ढकना, भगवान्का भजन करना और हाथोंसे कुछ-न-कुछ देते देना—

मीठा बोलण निंव चलण, पर अवगुन ढक लैण।
पांचों चंगा नानका, हरि भज हाथां दैण॥

*** *** ***

एक तरफ परमात्मा है और एक तरफ संसार है। आप स्वयं परमात्माके अंश हैं और आपका शरीर प्रकृतिका अंश है। परन्तु आपने अपनेको गौण बना दिया और शरीरको ही मुख्य बना दिया। शरीरकी मुख्यताको लेकर अपनेको संसारी बना दिया। वास्तवमें शरीर आपसे अलग है। **आप शरीरके बिना भी रहते हो, पर शरीर आपके बिना नहीं रहता।** आपका शरीर छूट जाय तो शरीर नष्ट हो जायगा, पर आपका कुछ बिगड़ेगा नहीं। आप नित्य हो। इस बातको इस प्रकारसे समझें। जाग्रत् और स्वप्नमें शरीरकी मुख्यता रहती है। परन्तु सुषुप्ति (गाढ़ नींद)-में शरीरकी मुख्यता नहीं रहती, आपकी मुख्यता रहती है। सुषुप्तिमें अहंकारसे रहित आपकी अनुभूति होती है। जागनेपर आप दो बातें कहते हो—मेरेको कुछ भी पता नहीं था, और मैं सुखसे सोया था। ज्ञानके अभावका और सुखका आप स्मरण करते हैं। इससे सिद्ध होता है कि सुषुप्तिमें इन्द्रियाँ-मन-बुद्धि-अहंकार नहीं रहते, अविद्यामें लीन हो जाते हैं, पर आप वैसे-के-वैसे रहते हो। आप सुषुप्तिमें अहंकारके बिना भी थे। इसलिये सुषुप्तिसे जागनेपर आप यह नहीं कहते कि इतनी देर मैं नहीं था।

वास्तवमें आपका स्वरूप अहंकारसे रहित है। आप स्वयं चेतन हैं, अहंकार जड़ है। आप परमात्माके अंश हैं, अहंकार प्रकृतिका कार्य है। अहंकार पृथ्वीकी जातिका है—‘**भूमिरापोऽनलो वायुः.........अहङ्कार इतीयं मे**’ (गीता ७। ४)। सुषुप्तिमें अहंकार लीन होता है, उसका अभाव नहीं होता। अगर आप अहंकारसे रहित हो जायँ तो आपको शान्ति मिल जायगी, आपकी परमात्मामें स्थिति हो जायगी—‘**निर्ममो निरहङ्कारः स शान्तिमधिगच्छति॥ एषा ब्राह्मी स्थितिः......**’ (गीता २। ७१-७२)। यह ब्राह्मी-स्थिति अहंकारसे रहित होनेसे होगी, अहंकारके लीन होनेसे नहीं होगी।

*** *** ***

जो साधन करके संसारसे ऊँचा उठना चाहते हैं, परमात्माको प्राप्त करना चाहते हैं, ऐसे भाई-बहनोंके लिये कुछ मार्मिक बातें हैं। छोटी-छोटी बातें भी आप याद कर लें और काममें लाना शुरू कर दें तो बहुत लाभकी बात है।

मेरा कुछ नहीं है—यह बात बहुत दामी है। अगर इसको आप ठीक समझ लें तो निहाल हो जायँ! जिनको आप अपना समझते हो, क्या उनको सदा अपने साथ रख सकते हो? क्या उनके साथ सदा रह सकते हो? क्या उनको अपने मनके मुताबिक बदल सकते हो? यदि नहीं तो फिर वे अपने कैसे? किसीपर अपना वश नहीं चलता तो यह बात सिद्ध हुई वह अपना नहीं है। **इतनी बात आप मान लो कि जो मिलता है और बिछुड़ जाता है, वह अपना नहीं होता।** भगवान् सदासे ही मिले हुए हैं और कभी बिछुड़ेंगे नहीं। **एक भगवान्‌के सिवाय कोई आपका साथी नहीं है। सबकी सेवा करो, सबको सुख पहुँचाओ, पर उनपर अधिकार मत जमाओ कि वे मेरे हैं।** जैसे रेलगाड़ीमें यात्रा करते समय कहते हैं कि यह डिब्बा मेरा है, यह सीट मेरी है, ऐसे ही व्यवहारके लिये कुटुम्ब-परिवार मेरे हैं। ऐसा माननेसे आपका दुःख कम हो जायगा, शोक नहीं होगा, आनन्द हो जायगा। किसीको भी मेरा मानोगे तो दुःख पाओगे। भगवान्‌के सिवाय मेरा कोई नहीं है, यह बहुत ऊँचे दरजेकी बात है। जिन्होंने भगवान्‌को अपना माना, वे सन्त हो गये, महात्मा हो गये!

*** *** ***

हम मृत्युलोकमें हैं—ऐसा नहीं मानना चाहिये। हम भगवान्‌के हैं और भगवान्‌के लोकमें ही रहते हैं। हम भगवान्‌के ही हैं, भगवान्‌के ही दरबारमें रहते हैं, भगवान्‌का ही काम करते हैं, भगवान्‌का ही प्रसाद पाते हैं और भगवान्‌के ही जनोंकी सेवा करते हैं।

जो गृहस्थमें रहते हैं, उनको गृहस्थकी प्राप्ति होगी, भगवान्‌की नहीं। जैसे विवाहके बाद कन्या ससुरालकी हो जाती है, ऐसे ही साधन करनेवाले सज्जनोंको भगवान्‌का ही हो जाना चाहिये कि मैं गृहस्थ या साधु नहीं हूँ, मैं तो भगवान्‌का हूँ। यह बात आपके भीतर हरदम रहनी चाहिये कि हम भगवान्‌के हैं, संसारके नहीं हैं। ऐसा होनेसे जल्दी काम होगा, नहीं तो देरी लगेगी। भगवान्‌की प्राप्ति भगवान्‌का होनेसे होगी, ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि अथवा गृहस्थ, साधु आदि होनेसे नहीं होगी। ब्राह्मणको ब्राह्मणी मिल सकती है, भगवान् कैसे मिलेंगे? भगवान् तो भक्तको मिलेंगे। गोस्वामीजीने कहा है—

बिगरी जनम अनेक की सुधरै अबहीं आजु।
होहि राम को नाम जपु तुलसी तजि कुसमाजु॥

(दोहावली २२)

भगवान्‌का होकर नामजप करो—***‘होहि राम को नाम जपु’***। जो रामका होता है, उसको राम मिलते हैं। इसलिये सबसे पहली बात यह है कि अपनेको भगवान्‌का मान लो; क्योंकि वास्तवमें हो ही भगवान्‌के। **अपनेको भगवान्‌का मान लोगे तो फिर भगवान् सुगमतासे मिल जायँगे।** भगवान् भी राजी हो जायँगे, संसार भी राजी हो जायगा।

*** *** ***

समझमें आये या न आये, ऐसा मान लें कि हम भगवान्‌के हैं। बातें तो दूसरी बहुत हैं, पर **‘**मैं भगवान्‌का हूँ**’**—यह सार बात है। इसलिये इस बातको मैं बार-बार कहता हूँ। आप कह सकते हो कि स्वामीजी एक ही बात बार-बार कहते हैं कि हम भगवान्‌के हैं। पर बार-बार कहनेपर भी आप नहीं मानते, फिर एक बार कहनेसे कैसे मान लोगे? इसलिये आप उकताओ मत। भगवान्‌के सिवाय कोई भी चीज आपके साथ रहनेवाली नहीं है। **संसारमें आप खूब मौजसे रहो, पर ‘भगवान् मेरे हैं’—यह बात मत भूलो। फिर सब ठीक हो जायगा। त्याग, वैराग्य आदि सब अपने-आप होंगे।**

आपसे एक बात पूछता हूँ कि भगवान्‌के सिवाय आपका और हमारा क्या सम्बन्ध है? बताओ। आपको मेरी बात अच्छी लगती है, आप सुनने आते हो तो किस सम्बन्धसे आते हो? भगवान्‌के सम्बन्धसे आप मुझे बड़े अच्छे लगते हो, और भगवान्‌के ही कारणसे हम भी आपको अच्छे लगते हैं। इसके सिवाय और हमारे बीच क्या लेन-देन है, क्या मतलब है? आप हमारे क्या लगते हैं और हम आपके क्या लगते हैं?

मीराबाईने कहा है—***'मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई'***। दूसरा कोई है तो अच्छी बात, नहीं है तो अच्छी बात, हमें दूसरेसे क्या मतलब? ज्ञानमार्गमें जड़ताका त्याग करना पड़ता है। त्याग करनेपर भी भीतरमें त्याज्य वस्तुकी सूक्ष्म सत्ता बहुत दूरतक रहती है। परन्तु भक्तिमार्गमें त्याज्य वस्तु कोई है ही नहीं। अपरा प्रकृति भी भगवान्‌की ही है। जड़-चेतन सब कुछ भगवान् ही हैं। इसलिये भक्तिमार्गमें दूसरी सत्ता सुगमतासे मिट जाती है। इस तरफ मेरी दृष्टि बहुत देरीसे गयी है! भक्तियोग ज्ञानयोग और कर्मयोग—दोनोंका फल है। ज्ञानयोग और कर्मयोग साधन हैं, भक्तियोग साध्य है। ज्ञानयोग और कर्मयोगसे मुक्ति होती है, पर भक्तियोगसे प्रतिक्षण वर्धमान प्रेमकी प्राप्ति होती है।

***   ***   ***

भगवान्‌की प्राप्ति न होनेमें प्रारब्ध आदि कारण नहीं है, प्रत्युत लोगोंमें लगनकी कमी कारण है। अभी भगवान्‌के प्रति बेपरवाह ज्यादा हो रही है! अपनी लगन हो तो सब काम ठीक हो जायगा।

अपनेपर भगवान्‌की कृपा कम नहीं माननी चाहिये। भगवान्‌की कृपासे ही सब सन्त-महात्मा हुए हैं। भगवान्‌की कृपासे जो काम होता है, वह अपने उद्योगसे नहीं होता। सत्संग भी अपने उद्योगसे नहीं मिलता, प्रत्युत कृपासे ही मिलता है। इसलिये सदा भगवान्‌की कृपाका आश्रय लेकर ही साधन करना चाहिये।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार—यह आठ प्रकारकी प्रकृति भगवान्‌की है, किसी व्यक्तिकी नहीं है। संसारमात्रमें जो चीजें हैं, सब भगवान्‌की हैं। आपको भी जो चीजें मिली हैं, वे भगवान्‌की हैं। आप उनपर अपना कब्जा कर लेते हो, यह गलती होती है। जगत् है परमात्माका, पर अपना मान लिया जीवने—**'ययेदं धार्यते जगत्'** (गीता ७। ५)। अपरा (जड़) और परा (चेतन)—दोनों प्रकृतियाँ भगवान्‌की हैं (गीता ७। ४-५)। शरीर भी भगवान्‌की प्रकृति है और शरीरी भी भगवान्‌की प्रकृति है। परन्तु मनुष्यने शरीरादि वस्तुओंको भी अपना मान लिया और अपनेको भी अपना मान लिया, यह गलती की है। आप मनसे किसी भी चीजको अपनी मत मानो। जो चीज भगवान्‌की है, उसको हम अपनी क्यों मानें? वस्तुओंका सदुपयोग करो, व्यक्तियोंकी सेवा करो, पर अपना मत मानो। वे रहें तो अच्छी बात, चले जायँ तो अच्छी बात! उनके आने-जानेसे सुखी-दुःखी मत होओ। उसको भगवान्‌का विधान समझकर प्रसन्न रहो। भगवान्‌की मरजीमें अपनी मरजी मिला दो और मौजसे रहो! दो बातें याद रखो—करनेमें सावधान और होनेमें प्रसन्न।

***   ***   ***

क्रिया और पदार्थ प्रकृतिके हैं। जो प्रकृतिसे अतीत तत्त्व है, वह क्रिया और पदार्थसे रहित, सम, शान्त है। उसी तत्त्वको हमें प्राप्त करना है। वह तत्त्व सबके भीतर समाया हुआ है। परन्तु मनुष्यकी बुद्धि क्रिया और पदार्थपर ही लगी हुई है!

आप कोई भी काम करो तो पहले चुप हो जाओ। चुप, शान्त होनेका स्वभाव बना लो। कोई भी चिन्तन मत करो, न आत्माका, न परमात्माका, न संसारका। इसमें बड़ी विलक्षण, अलौकिक

शक्ति है। इस प्रकार आधा मिनट, पाव मिनट भी चुप होनेके बाद काम करो तो आपका काम बहुत बढ़िया होगा। लौकिक और पारमार्थिक दोनों लाभ होंगे। व्यवहार भी अच्छा होगा, परमार्थ भी अच्छा होगा। परन्तु नींद नहीं आनी चाहिये। चुप होनेमें जो शक्ति है, वह नींदमें नहीं है। नींदसे विश्राम तो मिलता है, शरीर स्वस्थ होता है, पर परमात्माकी प्राप्ति नहीं होती।

मैंने संस्कृत व्याकरणकी पढ़ाई की है। व्याकरणमें विषयको याद करना पड़ता है। मैंने याद किया है और उसके सूत्र मुझे अभीतक याद हैं। मैंने उनको जिस विधिसे याद किया, वह विधि आपको बताता हूँ। अपने पाठको एक-डेढ़ घण्टा खूब रटकर फिर मैं चुप हो गया। फिर दिनभर दूसरा काम किया। फिर रातको सोते समय उस पाठको बिना पुस्तकके बड़ी कठिनतासे पाठ किया और सो गया। सुबह नींदसे उठते ही उसका पाठ किया तो वह बड़ी सुगमतासे धड़ाधड़ याद आ गया! कहीं अटका ही नहीं! यह मेरा अनुभव किया हुआ है। आप भी अनुभव करके देखो। तात्पर्य है कि चुप होनेमें बहुत शक्ति है। सब शक्तियाँ चुप रहनेसे ही पैदा होती हैं। आप चलते-चलते थक जाते हो तो थोड़ी देर बैठनेसे पुनः चलनेकी शक्ति मिल जाती है। बन्दर चलते-चलते बैठ जाता है, फिर चल पड़ता है। तात्पर्य है कि विश्रामके बिना आपका कोई कार्य नहीं होता। चलनेसे शक्ति खर्च होती है, बैठनेसे शक्ति संचित होती है। बोलनेसे शक्ति खर्च होती है, चुप रहनेसे शक्ति संचित होती है। चुप सबको होना ही पड़ता है। 'चुप' का कोई निषेध नहीं कर सकता।

सत्संग सुननेसे पहले चुप हो जाओ, फिर सुनो तो सत्संग बहुत अच्छा समझमें आयेगा। बोलनेसे पहले चुप हो जाओ, फिर बोलो तो बहुत बढ़िया बातें आयेंगी। **उस 'चुप' में साक्षात् सच्चिदानन्दघन परमात्मा हैं। जिस मुक्तिको, ज्ञानको आप प्राप्त करना चाहते हैं, वह उस 'चुप' में है। चुप होनेमें एक विलक्षण शक्ति है। वह शक्ति साक्षात् परमात्मा स्वयं हैं।**

*** *** ***

मनुष्यमात्रका लक्ष्य परमात्मा है। सुख भोगना और पदार्थोंका संग्रह करना मनुष्यशरीरका लक्ष्य नहीं है—***'एहि तन कर फल बिषय न भाई'*** (मानस, उत्तर० ४४। १)। ये विषयभोग तो पशु-पक्षी आदि सब योनियोंमें मिलेंगे। परमात्माकी प्राप्तिका अवसर एक मनुष्यशरीरमें ही है।

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर—ये छः रिपु बताये गये हैं। इनमें 'काम' मुख्य है। **कामके वशमें वे होते हैं, जो सदा दुःखी रहते हैं।** जिनको और जगह शान्ति नहीं मिलती, उनकी काममें ही रुचि रहती है। उनको कहीं थोड़ा-बहुत सुखका भास होता है तो काममें ही सुखका भास होता है। जितनी नीची योनि होती है, उतनी वह ज्यादा कामके वशमें होती है। ऊँची योनि कम कामके वशमें होती है; क्योंकि उसको संसारमें कामके सिवाय भी कुछ सुख मिल जाता है। परन्तु नीची योनिमें तो सन्ताप-ही-सन्ताप होता है, इसलिये उसको केवल काममें ही सुख मिलता है। वे कामके ही गुलाम होते हैं—***'सदा काम के चेरे जानी'*** (मानस, बाल० ८५। ४)।

मनुष्ययोनिमें विवेकशक्ति मुख्य है। ऐसी विवेकशक्ति अन्य योनियोंमें नहीं है। मनुष्य जब उस विवेकको महत्त्व न देकर भोग और संग्रहमें लग जाता है, तब उसका विवेक दुराचारमें लग जाता है। जिस विवेकशक्तिसे वह सबका उद्धार कर सकता है, उसी विवेकशक्तिका दुरुपयोग करके वह दूसरोंके नाशके लिये परमाणु-बम आदि बना लेता है। जो शक्ति जीवका उद्धार करनेवाली होती है, वही शक्ति दुरुपयोग करनेसे जीवका महान् पतन करनेवाली हो जाती है।

भगवान्की भक्तिमें जो ताकत है, विलक्षणता है, वह भोगोंमें नहीं है। इसलिये भगवान्के शरणागत

भक्त भोगोंमें आकृष्ट नहीं होते। वे मायाको तर जाते हैं। भगवान् कहते हैं—

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(गीता ७। १४)

'मेरी यह गुणमयी दैवी माया दुरत्यय है अर्थात् इससे पार पाना बड़ा कठिन है। जो केवल मेरे ही शरण होते हैं, वे मायाको तर जाते हैं'।

आपलोगोंसे प्रार्थना है कि आप भगवान्‌को याद करो और हरदम 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'—ऐसा कहते रहो तो आपका वह विवेक जाग्रत् हो जायगा, जिससे आप मायासे तर जाओगे।

*** *** ***

श्रोता—आपने कहा कि मुक्ति होनेपर संसारके सारे दु:ख मिट जाते हैं और स्वयं वैसा-का-वैसा रह जाता है। यह 'स्वयं' क्या चीज है, हमारी समझमें नहीं आया?

स्वामीजी—आप यह तो जानते ही हो कि 'मैं हूँ'। आप 'मैं हूँ' के रूपमें अपनी जो सत्ता मानते हो, उसको 'स्वयं' कहते हैं। परन्तु सबके साथ मिलनेके कारणसे अपनेको पहचानते नहीं। जैसे, एक पिता अपने बेटेके विद्यालयमें गये। वहाँ सब छात्र वेदपाठ कर रहे थे। वेदपाठमें उनका बेटा भी बोल रहा था, पर सबके साथ बोलनेसे वे पहचान नहीं सके कि यह आवाज मेरे बेटेकी है। कारण कि उसकी आवाज सबके साथ मिली हुई थी। इसी तरह 'मैं हूँ' भी शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, अहंकारके साथ मिला हुआ होनेसे अलगसे पहचाननेमें नहीं आता। परन्तु इन शरीरादि सबका जो मालिक है, वह आप हो। शरीरादि सब आपकी सत्तासे सत्ता पाते हैं। अगर 'मैं हूँ' को पहचानना चाहते हो तो सुषुप्ति, गाढ़ नींदमें पहचान सकते हो। सुषुप्तिमें मन-बुद्धि-इन्द्रियाँ आदि सब लीन हो जाते हैं, पर आप रहते हो। जागनेपर जो कहता है कि 'मैं बड़े सुखसे सोया, मुझे कुछ भी पता नहीं था', वह आप हो।

जो शरीरमें रहते हुए शरीर-इन्द्रियाँ-मन-बुद्धिका मालिक बना हुआ है, वह आप हो। मैं पूरा समझ गया, मैं थोड़ा समझा और मैं बिलकुल नहीं समझा—ऐसा जो कहता है, वह आप हो। शरीरादि सब प्रकृतिके अंश हैं, आप परमात्माके अंश हो।

श्रोता—यहाँ एक स्त्री बीड़ी पी रही थी। उसको मना किया तो वह बोली कि स्वामीजी महाराज कहते हैं कि सब चीजोंमें भगवान् हैं, तो बीड़ीमें भी भगवान् हैं!

स्वामीजी—ठीक बात है! मैंने यह भी कहा है कि नरकोंमें भी भगवान् हैं! बीड़ी पीओगे तो नरक भोगना पड़ेगा; नरकमें भी भगवान् हैं। वहाँ जूता पड़ेगा तो जूतेमें भी भगवान् हैं! मार पड़ेगी तो मारमें भी भगवान् हैं!.......याद रखो, जो इस तरह भगवान्‌का बहाना लेकर निषिद्ध काम करते हैं, उनको औरोंकी अपेक्षा ज्यादा दण्ड होगा।

*** *** ***

गीतामें भगवान्‌के चार प्रकारके भक्त बताये गये हैं—अर्थार्थी, आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी अर्थात् प्रेमी (गीता ७। १६)। 'अर्थार्थी' आरम्भिक भक्त होते हैं, जो विशेष सत्संग किये हुए नहीं होते। उनमें धनकी इच्छा तो रहती है, पर वे अन्य उपायसे धन न चाहकर केवल भगवान्‌से ही धन चाहते हैं। अर्थार्थी भक्तोंमें ध्रुवजी महाराजका उदाहरण दिया जाता है। ध्रुवजीने राज्य-प्राप्तिके लिये भगवान्‌का भजन किया, पर राज्य मिलनेपर उनके मनमें ज्यादा प्रसन्नता नहीं हुई। उन्हें अपनी गलतीका

अनुभव हुआ कि भगवान्‌से चाहना नहीं करनी चाहिये। अपने-आपको ही भगवान्‌को दे देना चाहिये कि मैं तो आपका हूँ।

जो अपना दुःख दूर करनेके लिये केवल भगवान्‌की शरण लेते हैं, और किसीसे सहायता नहीं माँगते, वे 'आर्त' भक्त होते हैं। इसी तरह जो केवल भगवान्‌से ही तत्त्वज्ञान चाहते हैं, वे 'जिज्ञासु' भक्त होते हैं। जिनमें धन, दुःखनिवृत्ति, तत्त्वज्ञान, मुक्ति आदिकी कोई कामना नहीं होती, ऐसे प्रेमी भक्त भगवान्‌के 'ज्ञानी' भक्त होते हैं। ऐसे भक्त सर्वश्रेष्ठ हैं।

जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु॥

(मानस, अयोध्या० १३१)

भगवान्‌के प्रेमी भक्तमें कोई कामना नहीं रहती। कारण कि भगवान्‌के प्यारे भक्त केवल भगवान्‌को ही चाहते हैं। भगवान्‌से प्रेम होते ही कामना नष्ट हो जाती है।

जो कामना रखते हैं, वे भगवान्‌को भगवान् नहीं मानते, प्रत्युत एक मशीनकी तरह मानते हैं। वे भगवान्‌को कामनापूर्तिका साधन मानते हैं, साध्य नहीं मानते। वे भगवान्‌के भक्त नहीं होते, प्रत्युत धनके भक्त होते हैं। जो झूठ, कपट, बेईमानी आदि करके धन कमाते हैं, वे झूठ-कपट आदिके भक्त होते हैं, भगवान्‌के भक्त नहीं होते।

वास्तवमें सब कुछ परमात्मा-ही-परमात्मा है—'**वासुदेवः सर्वम्**' (गीता ७। १९)। कामनाके कारण ही संसार तरह-तरहका दीखता है। अपनेमें कोई कामना न हो तो केवल भगवान् ही दीखेंगे, और कोई चीज दीखेगी ही नहीं। संसारमें अभावके सिवाय कुछ नहीं है।

प्रेमी भक्तोंकी दृष्टि संसारकी तरफ तो जाती ही नहीं, भगवान्‌की तरफ भी पूरी दृष्टि नहीं जाती! श्रीजी अपनी सखियोंसे कहती हैं कि मुझे अभीतक भगवान् श्रीकृष्णके दर्शन नहीं हुए! एक दिन श्रीजी जल भरने गयीं तो वहाँ भगवान्‌को देखा तो एकटक देखती ही रह गयीं। गोपिकाओंने कहा कि आज तो तुम्हें भगवान्‌के दर्शन हो गये! श्रीजी बोलीं कि ना-ना, भगवान्‌के दर्शन तो हुए ही नहीं! मैंने भगवान्‌के कुण्डलोंकी आभा देखी तो उस आभामें ही मेरा मन अटक गया, आगे मेरी दृष्टि गयी ही नहीं! श्रीजी गोपिकाओंके चरणोंमें पड़ती हैं कि तुम धन्य हो, बड़भागी हो कि तुमने भगवान्‌के दर्शन कर लिये! मुझे तो भगवान्‌के दर्शन हुए ही नहीं! इस प्रकार प्रेमी भक्त संसारको क्या देखें, भगवान्‌को भी पूरा नहीं देखते! यह प्रेमकी विलक्षणता है! चींटीके आगे गुड़की भेली रख दी जाय तो वह जहाँ मुँहमें गुड़ लेती है, वहीं मस्त हो जाती है, इतनी बड़ी भेलीको वह कैसे देखे!

***   ***   ***

हम संसारसे स्वार्थकी भावना रखते हैं—यह सब दुःखोंका मूल है। दूसरा मेरे काम आ जाय—यह खास बाधा है। आप दूसरेके काम आ जाओ, दूसरेकी सेवा करो, यह तो ठीक है, पर दूसरा मेरे काम आ जाय, मेरी सेवा करे, यह बन्धन है। इस कामनासे ही चिन्ता, शोक, भय, हलचल आदि होते हैं। अगर हम संसारसे कोई चाहना न रखें तो दुःख कोई-सा नहीं होगा।

किसीके मरनेका दुःख होता है तो उसका कारण भी यही है कि हम वर्तमानकी अथवा भविष्यकी कुछ चाहना रखते हैं। जवान आदमी मर जाय तो शोक ज्यादा होता है; क्योंकि उससे आशा ज्यादा होती है। परन्तु नब्बे-पचानबे वर्षका बूढ़ा मर जाय तो शोक नहीं होता; क्योंकि उससे आशा नहीं

रही कि वह कमाकर कुछ देगा। पचीस वर्षका जवान मरता है तो दु:ख होता है, पर वह सत्रह-अठारह वर्षोंसे बीमार रहा और डॉक्टरोंने कह दिया कि यह जीयेगा नहीं, वह अगर मर जाय तो दु:ख नहीं होगा; क्योंकि उससे अब आगे इच्छापूर्तिकी आशा नहीं रही। जीवनमें जिससे सुख लिया ज्यादा है, पर दिया कम है, उसके मरनेका दु:ख होता है। सुख नहीं लिया हो तो दु:ख नहीं होगा। **जितना सुख अधिक लिया है और सुखकी आशा जितनी अधिक है, उतना ही दु:ख होगा।** तात्पर्य है कि दु:ख अपनी स्वार्थबुद्धिसे होता है।

संसारमें जितने भी सम्बन्ध हैं, वे सब ऋण चुकानेके लिये हैं। वे पहले जन्मके ऋणके अनुसार बदला लेनेके लिये अथवा चुकानेके लिये, सुख देनेके लिये अथवा दु:ख देनेके लिये आते हैं। घरमें केवल बेटा-बेटी ही नहीं, गाय-भैंस आदि पशु-पक्षी भी ऋण चुकानेके लिये ही आते हैं।

चाहना करनेसे वस्तु मिलती है—यह नियम नहीं है, और चाहना न करनेसे वस्तु नहीं मिलती—यह भी नियम नहीं है। **वस्तुके मिलने या न मिलनेमें चाहना कारण नहीं है, प्रत्युत पूर्वकृत कर्म कारण हैं।** मिलनेवाली वस्तु मिलेगी ही, चाहना करो तो मिलेगी, चाहना न करो तो मिलेगी। इसी तरह नहीं मिलनेवाली वस्तु नहीं मिलेगी, चाहना करो तो भी नहीं मिलेगी, चाहना न करो तो भी नहीं मिलेगी। इस सिद्धान्तको यदि आदमी पकड़ ले तो निहाल हो जाय! इच्छा करके हम गुलाम क्यों बनें? सुख-दु:ख भी मिलनेवाले ही मिलेंगे, नहीं मिलनेवाले नहीं मिलेंगे। अत: समझदारी यही है कि हम इच्छा करें ही नहीं।

प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्या
दैवोऽपि तं लङ्घयितुं न शक्तः।
तस्मान्न शोचामि न विस्मयो मे
यदस्मदीयं न हि तत्परेषाम्॥

(पञ्चतन्त्र २। ११३; गरुड़पुराण आचार० ११३। ३२)

'प्राप्त होनेवाली वस्तु मनुष्यको मिलती ही है, विधाता भी उसको रोकनेमें समर्थ नहीं है। इसलिये न तो (वस्तु न मिलनेपर) मैं शोक करता हूँ और न (वस्तु मिलनेपर) मुझे आश्चर्य ही होता है; क्योंकि जो वस्तु मेरी है, उसे दूसरा कोई नहीं ले सकता।'

अगर आप इच्छा छोड़ दें तो निर्वाहकी सब चीजें अपने-आप मिलेंगी।

धान नहीं धीणों नहीं, नहीं रुपैयो रोक।
जीमण बैठे रामजी, आन मिलै सब थोक॥
प्रारब्ध पहले रचा, पीछे रचा सरीर।
तुलसी चिंता क्यों करे, भज ले श्रीरघुबीर॥

माँका दूध पहले आता है, बालक पीछे पैदा होता है। बालक सो जाता है तो माँको चिन्ता होती है कि भूखा सो गया! वह जैसे-तैसे जगाकर उसको दूध पिला देती है। दूसरा कोई देनेवाला यों जबर्दस्ती देगा! आप रोते रहो तो भी नहीं मिलनेवाली वस्तु नहीं मिलेगी। चोरी करनेवालेको भी धन मिलना है तो मिलेगा, नहीं मिलना है तो नहीं मिलेगा। परन्तु चोरीका दण्ड अवश्य भोगना पड़ेगा; क्योंकि वह अन्यायपूर्वक लेना चाहता है। सन्त-महात्मा सब इच्छाएँ छोड़कर अचाह हो जाते हैं तो मौजसे रहते हैं। मिले तो आनन्द, न मिले तो आनन्द! कम मिले तो आनन्द, ज्यादा मिले तो आनन्द! उनका आनन्द किसी वस्तुके अधीन नहीं रहता।

*** *** ***

मनुष्योंकी कामना जितनी कम होती है, उतने ही वे ऊँचे होते हैं और जितनी कामना ज्यादा होती है, उतने ही वे नीचे होते हैं। संसारकी कामना जितनी अधिक होती है, उतने ही वे संसारमें ज्यादा फँसते हैं, उतना ही उनका अन्त:करण ज्यादा अशुद्ध होता है। अन्त:करण अशुद्ध होनेसे उनके आचरण भी अशुद्ध होते हैं। उनकी रुचि भी मांस-मदिरा, मछली-अण्डे आदि महान् अशुद्ध पदार्थोंमें होती है।

भगवान्‌के भक्तोंमें भी वे भक्त ऊँचे होते हैं, जिनमें कामना नहीं होती—'**तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते**' (गीता ७। १७)। जैसे-जैसे अन्त:करण निर्मल होता है, वैसे-वैसे कामना कम होती है। ज्यों-ज्यों कामना कम होती है, त्यों-त्यों भगवान्‌की तरफ वृत्ति होती है। भगवान्‌की तरफ वृत्ति ज्यादा होनेसे वे अर्थार्थी, आर्त और जिज्ञासु भक्त नहीं होते, प्रत्युत ज्ञानी भक्त होते हैं।

संसारकी कामना हृदयमें रहनेपर मनुष्योंका विकास नहीं होता; क्योंकि कामनाके कारणसे उनका विवेकज्ञान ढक जाता है—'**कामैस्तैस्तैर्हृतज्ञाना:**' (गीता ७। २०)। अत: वे भोग और संग्रहमें ही लगे रहते हैं। उन्हें भोग ही प्रिय लगते हैं। सन्त-महात्माओंके पास जाकर, सत्संग करके भी वे भोगोंमें ही लगे रहते हैं, भोगोंसे ऊँचे नहीं उठते! वे सन्तोंके पास जाकर भी अपनी कामनाएँ पूरी करना चाहते हैं कि महाराज! मेरा बेटा ठीक हो जाय, मेरी बेटीका ब्याह हो जाय, मेरा अमुक काम सिद्ध हो जाय, आदि। अपने कल्याणकी तरफ उनकी वृत्ति जाती ही नहीं। परन्तु जो भगवान्‌के भक्त हैं, जिनका ज्ञान कामनाओंके कारण ढका हुआ नहीं है, उनका अन्त:करण महान् शुद्ध होता है। ऐसे भक्तोंके संगसे, दर्शनसे, चिन्तनसे मनुष्य शुद्ध हो जाता है!

भोगोंमें लगे हुए मनुष्योंको सत्संगी, त्यागी पुरुष सुहाते नहीं। अपनेमें बेसमझी अधिक होनेके कारण वे भगवान्‌में लगे हुए मनुष्योंको मूर्ख समझते हैं। परन्तु भगवान्‌में लगे हुए मनुष्योंको उन भोगी पुरुषोंपर दया आती है। उनके हृदयमें दु:ख होता है और वे चेष्टा करते हैं कि ये किसी तरहसे भगवान्‌में लग जायँ।

*** *** ***

गीतामें भगवान्‌ने अपने समग्ररूपको जाननेकी बात कही है—

मय्यासक्तमना: पार्थ योगं युञ्जन्मदाश्रय:।
असंशयं समग्रं मां यथा ज्ञास्यसि तच्छृणु॥

(गीता ७। १)

'हे पृथानन्दन! मुझमें आसक्त मनवाला, मेरे आश्रित होकर योगका अभ्यास करता हुआ तू मेरे जिस समग्ररूपको नि:सन्देह जिस प्रकारसे जानेगा, उसको उसी प्रकारसे सुन।'

भगवान्‌के समग्ररूपमें सगुण, निर्गुण, साकार, निराकार आदि सब रूप भी आ जाते हैं और संसार भी आ जाता है। इस समग्ररूपको भगवान्‌ने गीतामें '**वासुदेव: सर्वम्**' (गीता ७। १९) अर्थात् सब कुछ परमात्मा ही है—ऐसा भी कहा है। इससे पहले भगवान्‌ने अपनी अपरा और परा प्रकृतियोंका वर्णन किया। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि तथा अहंकार—यह 'अपरा (जड़) प्रकृति' है, और जीवात्मा 'परा (चेतन) प्रकृति' है। ये दोनों ही प्रकृतियाँ भगवान्‌की हैं।

मनुष्य और उसकी प्रकृति दो होते हुए भी एक होते हैं और एक होते हुए भी दो होते हैं। जैसे, आपमें आपका बल, स्वभाव, योग्यता, विद्या आदि आपसे एक भी है और आपसे अलग भी

है। आपका बल कभी घटता है, कभी बढ़ता है। आपका स्वभाव अच्छा भी होता है, मन्दा भी होता है। तात्पर्य है कि आपकी प्रकृति कम-ज्यादा होती है, पर आप कम-ज्यादा नहीं होते। आप वैसे-के-वैसे रहते हैं। पर आप अपनी प्रकृति (बल, स्वभाव आदि)-को अपनेसे अलग करके नहीं दिखा सकते। इस प्रकार बल, स्वभाव, योग्यता, विद्या आदिके सहित आपका जो स्वरूप है, वह आपका समग्ररूप है। इसी प्रकार अपरा और परा, जड़ और चेतनके सहित भगवान्‌का जो स्वरूप है, वह भगवान्‌का समग्ररूप है। भगवान् कहते हैं—

जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये।
ते ब्रह्म तद्विदुः कृत्स्नमध्यात्मं कर्म चाखिलम्॥
साधिभूताधिदैवं मां साधियज्ञं च ये विदुः।
प्रयाणकालेऽपि च मां ते विदुर्युक्तचेतसः॥

(गीता ७। २९-३०)

'वृद्धावस्था और मृत्युसे मुक्ति पानेके लिये जो मनुष्य मेरा आश्रय लेकर प्रयत्न करते हैं, वे उस ब्रह्मको, सम्पूर्ण अध्यात्मको और सम्पूर्ण कर्मको जान जाते हैं। जो मनुष्य अधिभूत तथा अधिदैवके सहित और अधियज्ञके सहित मुझे जानते हैं, वे मुझमें लगे हुए चित्तवाले मनुष्य अन्तकालमें भी मुझे ही जानते हैं अर्थात् प्राप्त होते हैं।'

तात्पर्य है कि ब्रह्म (निर्गुण-निराकार), अध्यात्म (अनन्त योनियोंके अनन्त जीव), कर्म (सृष्टि, प्रलय आदिकी सम्पूर्ण क्रियाएँ), अधिभूत (सम्पूर्ण पाञ्चभौतिक जगत्), अधिदैव (ब्रह्माजी आदि सभी देवता) तथा अधियज्ञ (विष्णु तथा उनके सभी रूप)—इन सबके सहित भगवान्‌का जो स्वरूप है, वह भगवान्‌का समग्ररूप है। समग्ररूप कहनेसे कोई रूप बाकी नहीं रहा।

यद्यपि सात्त्विक, राजस और तामस भाव भी भगवान्‌के ही रूप हैं, तथापि वे सब उपासना करनेयोग्य नहीं हैं। उपासना उसी रूपकी करनी चाहिये, जिससे जीवका कल्याण हो। इसलिये भगवान्‌ने कहा है कि मैं उन भावोंमें और वे भाव मेरेमें नहीं हैं—

ये चैव सात्त्विका भावा राजसास्तामसाश्च ये।
मत्त एवेति तान्विद्धि न त्वहं तेषु ते मयि॥

(गीता ७। १२)

'जितने भी सात्त्विक भाव हैं और जितने भी राजस तथा तामस भाव हैं, वे सब मुझसे ही होते हैं—ऐसा उनको समझो। परन्तु मैं उनमें और वे मुझमें नहीं हैं।'

अगर कोई तामस उपासना करेगा तो उसको नरकरूपसे भगवान् मिलेंगे; क्योंकि नरक भी भगवान् ही हैं! इसलिये **'जानने' और 'मानने' में तो सब भगवान्‌का ही स्वरूप है, पर 'करने' में उपासना करनेयोग्य रूप और उपासना न करनेयोग्य रूप अलग-अलग हैं।**

जो सब रूपोंमें भगवान्‌को ही देखते हैं, वे महात्मा होते हैं। उन महात्माओंके मनमें न राग होता है, न द्वेष होता है; न हर्ष होता है, न शोक होता है; न चिन्ता होती है, न भय होता है। वे सब विकारोंसे रहित होते हैं। वे भगवान्‌के भिन्न-भिन्न रूपों और लीलाओंको देख-देखकर मस्त रहते हैं।

*** *** ***

मूलमें सब-के-सब प्राणी भगवान्‌के अंश हैं। इस तत्त्वको भगवान् जानते हैं। इसलिये मेरा

आपलोगोंसे कहना है कि आप जैसे भी हों, वैसे-के-वैसे ही भगवान्‌की तरफ चलो। भगवान् सबको अपनानेके लिये तैयार हैं। हम जिसे बीसों-पचासों वर्षोंसे भजन करनेवाला अच्छा आदमी जानते हैं, वह अगर एक दिन किसी वेश्याके घरसे रात्रिमें निकलते हुए दिखायी दे जाय तो हमें वहम पड़ जाता है। उसका अन्तःकरण शुद्ध है कि अशुद्ध है—इसका निर्णय हमलोग नहीं कर पाते। उसके वेश्याके घर जानेमात्रसे हम उसे अशुद्ध मान लेते हैं। दूसरा आदमी गंगाके किनारे बैठा भजन करता है, पर उसका आचरण अच्छा नहीं है तो हमलोगोंकी वृत्ति उसके बुरे आचरणकी तरफ ही जाती है और हम उसको पाखण्डी मान लेते हैं। तात्पर्य है कि हम दूसरेके अवगुणको जल्दी पकड़ लेते हैं। परन्तु भगवान्‌का स्वभाव ऐसा नहीं है।

रहति न प्रभु चित चूक किए की। करत सुरति सय बार हिए की॥

(मानस, बाल० २९। ३)

भगवान् गीतामें कहते हैं—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(गीता ९। ३०)

'अगर कोई दुराचारी-से-दुराचारी मनुष्य भी अनन्यभक्त होकर मेरा भजन करता है तो उसको साधु ही मानना चाहिये। कारण कि उसने निश्चय बहुत अच्छी तरह कर लिया है।'

भगवान्‌के अन्तःकरणमें अच्छी बात छपती है, बुरी बात जल्दी छपती नहीं। परन्तु मनुष्योंका अन्तःकरण ऐसा है कि बुरेको तो बुरा मानते ही हैं, पर अच्छा भी कोई गल्ती करे तो उसको भी बुरा मान लेते हैं। हमारी वृत्ति बुराईकी तरफ जल्दी चली जाती है। परन्तु भगवान् अच्छे व्यक्तिमें अच्छापना कायम करते हैं और उसीसे जीवका उद्धार होता है। इसलिये आप भगवान्‌को अपना मानें।

पुण्य करनेसे मनुष्य पवित्र होता है, पर पाप न करनेसे जो पवित्रता होती है, वह पुण्य करनेकी अपेक्षा विशेष होती है। परन्तु भगवान्‌का चिन्तन-भजन करनेसे मनुष्यमें असीम पवित्रता आती है। दान-पुण्य, जप-तप, तीर्थ-व्रत आदि करनेसे तो सीमित पवित्रता आती है, पर भगवान्‌को याद करनेसे असीम पवित्रता आती है। जो भगवान्‌के भजनमें तल्लीन रहते हैं, उनके संगसे तीर्थ भी पवित्र हो जाते हैं—**'तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि स्वान्तःस्थेन गदाभृता'** (श्रीमद्भा० १। १३। १०)।

***   ***   ***

बाहरकी अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थिति तो प्रारब्धके अनुसार आयेगी ही, पर उसका अपने भीतर जो असर पड़ता है, यह अज्ञान है, मूर्खता है। जो भगवान्‌का भजन करते हैं, उनको दुःख, सन्ताप, जलन नहीं होती। वे प्रतिकूल परिस्थिति आनेपर दुःखी नहीं होते। उनके भीतर शान्ति, आनन्द, प्रसन्नता वैसी-की-वैसी ही रहती है। **अगर बाहरकी परिस्थितिका असर पड़ता है तो यह जड़ताका सम्बन्ध है।** जड़ताका सम्बन्ध टूटनेपर वृद्धावस्था और मृत्युका दुःख नहीं होता—**'जरामरणमोक्षाय मामाश्रित्य यतन्ति ये'** (गीता ७। २९)।

भक्त भगवान्‌का आश्रय लेकर साधन करते हैं—**'मामाश्रित्य यतन्ति ये'**। जो भगवान्‌का आश्रय लेकर साधन करते हैं, उनमें अभिमान नहीं आता; क्योंकि वे अपनी जो स्थिति मानते हैं, भगवान्‌की कृपासे ही मानते हैं। इसलिये उनको दुःख नहीं होता। जो साधनमें अपना उद्योग मानते हैं, उनको दुःख होता है। अतः हरेक भाई-बहनको भगवान्‌का आश्रय लेना चाहिये। संसारमें भगवान्‌के समान

दया करनेवाला, अपना साथी, परम सुहृद् कोई है नहीं, हुआ नहीं, होगा नहीं, हो सकता नहीं।

धनादि पदार्थोंका, अनुकूल परिस्थितिका आश्रय लेनेवाले कभी सुखी नहीं रह सकते; क्योंकि वे पदार्थ, परिस्थिति कभी एक समान रहते ही नहीं। धनी-से-धनी और गरीब-से-गरीब आदमीकी भी बाहरकी परिस्थिति बदलती रहती है। **लोग समझते हैं कि धनी आदमी सुखी रहते हैं। पर वास्तवमें जितने बड़े आदमी होते हैं, उनका दु:ख भी बड़ा होता है।** छोटे, साधारण आदमीका दु:ख भी छोटा होता है। जो बाहरकी परिस्थितिके साथ सम्बन्ध न रखकर भगवान्‌के साथ सम्बन्ध रखते हैं, वे हरदम प्रसन्न, सुखी रहते हैं।

आप भगवान्‌के अंश हैं, यह बात मैं बार-बार कहूँगा! कारण कि आपको असली शान्ति, आनन्द देनेवाला भगवान्‌का सम्बन्ध ही है।

***　　　***　　　***

सुखके भोगीको दु:ख भोगना ही पड़ता है। वह सुखभोगमें जितना राजी होगा, उतना ही दु:ख आयेगा। मैंने साधारण स्थितिमें रहनेवाली बहनों-माताओंकी बात देखी है। छोटा बालक ज्यादा हँसता है तो माँको चिन्ता हो जाती है कि यह बिना कारण इतना हँसता है, यह अच्छा शकुन नहीं है! यह जितना हँसता है, उतना आगे रोयेगा! सुखके बाद दु:ख और दु:खके बाद सुख संसारका नियम है। **जो अनुकूलतामें ज्यादा सुख भोगते हैं, उनको प्रतिकूलतामें दु:ख ज्यादा होता है।**

एक आदमी तीन मंजिल ऊपर बैठे तेलकी मालिश कर रहा था। साथ-साथ वह नीचे चलती हुई जनताको भी देख रहा था। अचानक उसके हाथसे तेलकी शीशी छूटकर नीचे जा पड़ी। पर वह शीशी फूटी नहीं। उसने समझा कि अब मेरे दिन भी गिरेंगे। उन्नतिके बाद अवनति, दिनके बाद रात आती ही है। अब आफत आयेगी! वह स्वयं अफसर था। उसने जेलमें जाकर अपना स्थान बना लिया और जान-बूझकर जेलमें रहने लगा। फिर कुछ ऐसी घटना घटी कि उसको कैदकी सजा हो गयी। समाचार दिया गया कि उसको कैद क्या करें, वह तो पहलेसे ही कैदमें बैठा है!

मैंने सन्तोंको भी देखा है और भेड़-बकरी चरानेवाले साधारण आदमियोंको भी देखा है, वे गरमीके दिनोंमें गरमी सह लेते हैं तो उनको सरदीके दिनोंमें सरदी सताती नहीं। जो गरमीको सहता है, वही सरदीको सह सकता है और जो सरदीको सहता है, वही गरमीको सह सकता है। **गरमीके दिनोंमें गरमी और सरदीके दिनोंमें सरदी सहनेसे दोनोंका असर नहीं पड़ता, शरीर मजबूत हो जाता है।** मैंने काशीके पास खेती करनेवाले लोगोंको देखा कि वे अपने छोटे बच्चोंके शरीरमें तेल लगाकर धूपमें खाटपर बैठा देते हैं। मैंने इसका कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि धूप सहनेकी शक्ति बालकपनेमें पड़ जायगी तो जवानीमें खेतमें काम करनेपर इनपर धूपका असर नहीं पड़ेगा। इसी तरह पहलेके राजा-महाराजा भी सरदी-गरमीको सहते थे, जिससे शरीर मजबूत रहे। आरामकी सब सामग्री होते हुए भी वे आरामकी परवाह नहीं करते थे।

आपलोगोंसे भी प्रार्थना है कि शरीरको आराम देकर उसको ऐसा निकम्मा मत बनाओ कि न गरमी सह सके, न सरदी। अपनी सहनेकी शक्ति बढ़ाओ, जिससे आपमें परतन्त्रता न रहे। इसलिये अनुकूल अवस्थामें आप सुख मत भोगो, उससे तटस्थ रहो तो प्रतिकूल अवस्थामें दु:खसे तटस्थ रहनेकी विद्या आपको आ जायगी। आप अनुकूलतामें तल्लीन होकर सुख नहीं भोगोगे तो दु:ख भोगनेकी शक्ति भी आपमें कायम हो जायगी। वह कायम होनेसे आपको दु:ख नहीं होगा। आप सुख-दु:ख दोनोंसे ऊँचे उठो। सुख-दु:खके गुलाम मत बनो। जो सुखमें हर्षित होते और दु:खमें रोते हैं, उनको जड़ अर्थात् मूर्ख बताया गया है—

सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिं मन माहीं॥

(मानस, अयोध्या० १५०। ४)

*** *** ***

जैसे वृक्षके मूलमें जल डालनेसे वृक्षके सब अवयव तृप्त हो जाते हैं और जैसे प्राणोंको आहार देनेसे मनुष्यके शरीरके सब अंगोंमें शक्तिका संचार हो जाता है, ऐसे ही परमात्माको याद करनेसे दुनियामात्रको शान्ति मिलती है। इससे श्रेष्ठ उपकार कोई है नहीं। **जो भजन करता है, उसके द्वारा संसारमात्रको बड़ी शान्ति मिलती है; क्योंकि संसारके मूल परमात्मा हैं।** संसारमात्रकी शान्तिके उद्देश्यको लेकर ही नर-नारायण उत्तराखण्डमें भगवान्‌का भजन करते हैं—**'क्षेमाय स्वस्तये नृणाम्'** (श्रीमद्भा० १०। ८७। ६)। इसके सिवाय उनकी और कोई चाहना नहीं है। ऐसे ही आपलोगोंसे कहना है कि भगवान्‌के भजनमें लग जाओ। आपको शान्ति मिलेगी, आपका दु:ख दूर होगा। अभी कलियुगका बड़ा क्रूर, आफत-ही-आफतका समय है। यह आफत भगवान्‌के भजनसे ही मिटेगी, और कोई उपाय नहीं है। भगवान्‌को याद करनेके समान दूसरा कोई उपाय नहीं है।

*** *** ***

भक्ति जाग्रत् करनेका सरल उपाय है—भगवान्‌को अपना मानना। संसारमें भी देखते हैं कि मनुष्य जिसको अपना मानता है, वह प्यारा लगता है। हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं—यह सार बात है। दूसरी सब बातें इसके अन्तर्गत आ जाती हैं। भगवान्‌को अपना मानना कल्याण करनेवाली चीज है। भगवान्‌को अपना समझनेमात्रसे भगवान् प्रसन्न हो जाते हैं। इसलिये आप भगवान्‌को माता, पिता, भाई, पति, पुत्र, मित्र, गुरु, चेला आदि कुछ भी मान लें।

माता रामो मत्पिता रामचन्द्रः
स्वामी रामो मत्सखा रामचन्द्रः।
सर्वस्वं मे रामचन्द्रो दयालु-
र्नान्यं जाने नैव जाने न जाने॥

(श्रीरामरक्षास्तोत्र ३०)

'राम मेरी माता हैं, राम मेरे पिता हैं, राम मेरे स्वामी हैं और राम मेरे सखा हैं। दयालु रामचन्द्र ही मेरे सर्वस्व हैं। उनके सिवाय और किसीको मैं नहीं जानता, बिलकुल नहीं जानता।'

भगवान् संसारमात्रमें मुख्य हैं, इसलिये उनमें हमारा प्रेम भी मुख्य होना चाहिये। भगवान् प्रेमको जाननेवाले हैं। भगवान्‌के जैसा प्रेमको जाननेवाला, पहचाननेवाला कोई नहीं है। भगवान्‌को प्रेम प्रदान करनेवाला मनुष्य है। **मनुष्यके सिवाय भगवान्‌से प्रेम करनेकी शक्ति किसीमें नहीं है, देवताओंमें भी नहीं!** मनुष्य प्रेम प्रदान करता है और भगवान् प्रेमका पान करते हैं! प्रेमसे भगवान् भी बँध जाते हैं!

*** *** ***

गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज सन्तोंमें भी विशेष सन्त, महात्माओंमें भी विशेष महात्मा हुए हैं। उनकी वाणी जीवोंका विशेष हित करनेवाली है। उनकी वाणीमें भगवान्‌के चरित्रका वर्णन विचित्र ढंगसे हुआ है। **यद्यपि वे कविकी दृष्टिसे भी श्रेष्ठ हैं, तथापि उनकी महिमा सन्तकी दृष्टिसे है, कविकी दृष्टिसे नहीं।** वे एक स्मृतिकार ऋषिकी तरह हैं। उनकी वाणीका श्रुति-स्मृतिकी वाणीकी तरह असर होता है। कविताकी दृष्टिसे देखें तो उनकी कविता बड़ी विचित्र, अलौकिक है। केशव कविसे किसीने पूछा कि कविता किसकी श्रेष्ठ है? उन्होंने उत्तर दिया कि कविता मेरी श्रेष्ठ है। फिर पूछा कि गोस्वामीजीकी

कविता? वे बोले कि वह कविता नहीं है, वह तो वेदकी वाणी है!

गोस्वामीजीका अनुभव भी बड़ा विचित्र है! उन्होंने साफ लिखा है—*'पायो परम बिश्रामु'* (मानस, उत्तर० १३० छं०)। यह सन्तोंके अनुभवकी ऊँची-से-ऊँची बात है! उनकी वाणीमें वेदान्तका भी वर्णन आता है और भक्तिका भी। पर भक्तिके विषयमें उन्होंने बड़े विचित्र ढंगसे बात कही है! विचार करनेसे मालूम होता है कि वे कितने गहरे उतरे हुए हैं! उन्होंने कहा है—

प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअंतर मल कबहुँ न जाई॥

(मानस, उत्तर० ४९। ३)

देखनेमें यह सामान्य चौपाई दीखती है, पर इसमें बड़ी गहरी बात बतायी है। तत्त्वज्ञान होनेपर भी भीतरमें एक सूक्ष्म अहम् रहता है। वह अहम् मुक्तिमें बाधक नहीं होता, पर वह द्वैत-अद्वैत आदि मतभेद करनेवाला होता है। परन्तु प्रेमकी प्राप्ति होनेपर वह अहम् सर्वथा मिट जाता है।

गोस्वामीजीकी वाणीमें जो अक्षर आये हैं, शब्द आये हैं, उनमें भी बड़ी विलक्षणता भरी हुई है। वह विलक्षणता भगवान्‌के प्रेमकी है। उनकी वाणीका गरीब-से-गरीब और धनी-से-धनी व्यक्ति, राजा-महाराजाओंके भी हृदयमें आदर है। संस्कृतके अच्छे-अच्छे विद्वान् भी उनकी रामचरितमानसका लोहा मानते हैं। लोगोंकी सत्संगमें, व्याख्यानमें उतनी रुचि नहीं होती, जितनी रामायणके पाठमें होती है—ऐसा मैंने देखा है। रामायण-पाठकी ध्वनिमें भी विलक्षणता है। अनपढ़ व्यक्ति भी केवल रामायणकी ध्वनि सुननेसे आकृष्ट हो जाते हैं। कारण कि इसमें सन्तकी वाणी और भगवान्‌का चरित्र है।

रामचरितमानस एक प्रसादिक ग्रन्थ है। मैंने ऐसी माताओंको देखा है, जो पढ़ी-लिखी नहीं हैं, पर पाठके समय रामायणपर अँगुली रखकर पढ़नेकी कोशिश करते-करते उनको पढ़ना आ गया! रामायण पढ़नेसे भगवान्‌के प्रति हृदयमें श्रद्धा-भक्ति पैदा हो जाती है। आप पाठ करके देखो। रामायणके पाठसे विचित्रता आती है। स्वर्गादि लोकोंमें भी रामचरितमानसकी कथा होती है, ऐसा सन्तोंके चरित्रमें सुननेमें आया है।.....रामायण और गीता—इन दो ग्रन्थोंका मेरेपर बहुत विशेष असर है।

*** *** ***

किसी भी मनुष्यका शरीर जाता हो तो उसको भगवान्‌का नाम सुनाओ। एक बातका ख्याल रखना, अगर मरनेवाला मनुष्य भगवान्‌का विरोधी हो, भगवन्नामसे चिढ़ता हो, सुनना नहीं चाहता हो, तो उसको मत सुनाना। कारण कि उसको सुनानेसे भगवन्नामका तिरस्कार होता है। अगर मरनेवाला भगवन्नाम सुनना चाहता हो तो भले ही घरवाले सब विरोध करें, तो भी उसको भगवन्नाम सुनाओ। वे आपको तकलीफ दें तो भी उसको सह लो, पर मरनेवालेको भगवन्नाम जरूर सुनाओ। भगवान् कहते हैं—

अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम्।
यः प्रयाति स मद्भावं याति नास्त्यत्र संशयः॥

(गीता ८। ५)

'जो मनुष्य अन्तकालमें भी मेरा स्मरण करते हुए शरीर छोड़कर जाता है, वह मेरे स्वरूपको ही प्राप्त होता है, इसमें सन्देह नहीं है।'

इसलिये **आप सबसे विशेष प्रार्थना है कि कोई भी प्राणी मरता हो, चाहे वह बालक हो, चाहे जवान हो, चाहे बूढ़ा हो, किसी अवस्थामें हो, उसको भगवान्‌की याद दिलाओ।** जबतक चेत हो, तबतक गीता सुनाओ, और चेत नहीं हो तो भगवन्नाम सुनाओ। चेत हो अथवा नहीं हो, दोनों अवस्थाओंमें

भगवन्नाम सुना सकते हैं।

***   ***   ***

आप एक बात याद रखो कि जो मिलता है और छूट जाता है, वह अपना नहीं है। जो पहलेसे ही मिला हुआ है और छूटता कभी है ही नहीं, वह एक परमात्मा ही अपना है। सच्ची बात स्वीकार करोगे तो सुख पाओगे। सच्ची बात स्वीकार नहीं करोगे तो दुःख पाना पड़ेगा, बड़ा कष्ट उठाना पड़ेगा और फायदा कुछ होगा नहीं! इसलिये सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाओ और 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। भगवान्‌के बिना अपना कोई नहीं है।

दुःखसे घबराना नहीं चाहिये। वह पाप दूर करनेके लिये आता है। कर्जदार आदमीका कर्जा चुक जाता है तो फिर सब काम ठीक हो जाता है। इसलिये दुःख आये तो भगवान्‌को याद करो। भगवान् हमारे पापोंको नष्ट करके हमें शुद्ध करते हैं। दुःखमें भक्तकी परीक्षा होती है कि यह सच्चा है कि कच्चा? भगवान् अनजान होकर, जाननेके लिये परीक्षा लेते हों, ऐसी बात नहीं है। वे भक्तको जनाते हैं कि तुम कितने पक्के हो। भगवान् अपने भक्तको कच्चा नहीं रखने देते। सच्चा भक्त कितनी ही आफत आनेपर भी विचलित नहीं होता। आफत आनेपर वह सच्चे हृदयसे भगवान्‌को ही पुकारता है। जब-जब दुःख पड़ा है, देवताओंने भी भगवान्‌को ही पुकारा है।

जैसे मैलसे भरा बालक माँको सुहाता नहीं और वह उसको स्नान कराके शुद्ध कर देती है, भले ही वह कितना रोये! ऐसे ही भगवान्‌को भक्तके पाप सुहाते नहीं। पापोंको दूर करनेके लिये वे कष्ट भेजते हैं। भगवान् वही करते हैं, जिसमें भक्तका हित हो। भगवान्‌के प्यारे भक्त इस बातको (भगवान्‌की कृपाको) समझते हैं। इसलिये दुःखमें भी वे मस्त रहते हैं। ज्यों कष्ट आता है, त्यों वे हृदयसे राजी होते हैं। बुखारमें भी उनको आनन्द आता है, उनके मुखसे कविता निकलती है! **साधारण आदमी तो दुःख आनेपर घबरा जाता है, पर भक्तकी बुद्धि दुःखमें विकसित होती है। ऐसे समयमें कोई उनसे पारमार्थिक, तात्त्विक बातें पूछे तो वे बहुत विलक्षण बातें बताते हैं, जबकि दूसरा आदमी घबराहटमें बातें भूल जाता है।**

वैद्य कड़वी दवा देता है तो उसमें भी उसकी कृपा होती है। कड़वी दवासे मुख भले ही कड़वा हो जाय, पर शरीर नीरोग हो जाता है। इसी तरह भगवान् ऐसी घटना घटाते हैं कि मनुष्य घबरा जाता है। मनुष्य उसको बड़ी आफत समझता है, पर वास्तवमें वह मंगलमय भगवान्‌की कृपा होती है!

***   ***   ***

अपने घरमें प्रेमपूर्वक रहना चाहिये। जिस घरमें कलह, लड़ाई-झगड़ा होता है, वह घर कलियुगका स्थान बन जाता है। उस घरमें सभी आदमी दुःख पाते हैं। आपसमें स्नेह रखनेसे, घरमें मिलकर रहनेसे सब तरहका लाभ होता है। घरमें शान्ति, आनन्द रहता है। **आपसमें प्रेम रखनेसे घरमें लक्ष्मी बढ़ती है और घरमें कलह होनेसे लक्ष्मी नष्ट हो जाती है।** यहाँ ज्यादा दिन तो रहना है नहीं। बहुत-सा समय तो चला गया और आगे कितना समय रहना है—इसका कुछ पता है नहीं, फिर कलह क्यों करें? घरमें प्रेम रहें। इसके लिये कुछ बातें बताता हूँ।

सबसे पहली बात यह है कि घरमें सभीको रोजाना अपनेसे बड़ोंके चरणोंमें प्रणाम करना चाहिये। बहनों-माताओंको चाहिये कि जहाँतक बने, अपने पतिके सिवाय दूसरे पुरुषको स्पर्श न करें। वह साधु हो या ब्राह्मण हो, किसीका भी स्पर्श न करें। उनको दूरसे प्रणाम करें। इससे स्त्रीका तेज

बढ़ता है। ऐसे ही पुरुष दूसरी स्त्रीको स्पर्श न करे तो उसका तेज बढ़ता है, ब्रह्मचर्य बढ़ता है, शक्ति बढ़ती है, भजन बढ़ता है, शान्ति बढ़ती है और सब तरहसे लाभ होता है।

लंकाको जलानेके बाद हनुमान्‌जी सीता माताके पास गये और कहा कि माँ, अब मुझे आज्ञा दो, मैं रामजीके पासमें जाऊँ। कोई समाचार कहना हो तो कह दो। यह सुनकर सीताजी रोने लग गयीं। हनुमान्‌जीने कहा कि माँ, आप घबराती क्यों हो? आप मेरी पीठपर बैठ जाओ तो अभी आपको ले जाकर रामजीसे मिला दूँ! सीताजीने कहा कि हनुमान्! मैंने अभीतक किसी पुरुषका स्पर्श नहीं किया है। रावणने मेरेको छुआ है, मैंने रावणको नहीं छुआ। अत: तुम्हारा स्पर्श मैं कैसे करूँ? सीताजीकी दृष्टिमें हनुमान्‌जी लव-कुशके समान ही थे। हनुमान्‌जीकी दृष्टिमें भी सीताजी माँ अंजनासे कम पूजनीय नहीं थीं। परन्तु सीताजीने आफतमें पड़ी होनेपर भी हनुमान्‌जीका स्पर्श नहीं किया! यह बात याद करके बहनों-माताओंको चाहिये कि वे किसी पर-पुरुषको छुए नहीं। इससे आपका तेज बढ़ेगा, शक्ति बढ़ेगी, प्रभाव बढ़ेगा, शान्ति बढ़ेगी, पातिव्रतधर्मका पालन होगा, लोक-परलोक सबमें लाभ होगा। भाइयोंको भी चाहिये कि वे रोजाना अपनी माँके चरणोंको अपने मस्तकसे छुएँ, हाथोंसे नहीं। माँके समान दूसरी बड़ी स्त्रियोंको जमीनपर माथा टेककर प्रणाम करें।

दूसरी बात, आपसमें प्रेमका बर्ताव करो। घरमें प्रेम रहनेसे लक्ष्मी बढ़ती है और सभी सुखी रहते हैं। सबके मनमें यह भाव रहे कि काम-धंधा मैं करूँ, आराम दूसरेको मिले। ऐसा भाव रहेगा तो काम भी कम हो जायगा। आप घरके कामके लिये नौकर रखते हैं। नौकर क्या साधु होता है! वह भी तो गृहस्थ है। वह अपने घरका काम भी करता है और आपके घरका भी काम करके पैसे ले जाता है। वह दो घरोंका काम करता है, पर आप अपने ही घरका काम पूरा नहीं कर सकते! फिर आप बड़े हुए कि नौकर बड़ा हुआ? जरा सोचो। **'तू कर, तू कर' कहनेसे काम-धंधा ज्यादा हो जायगा और आदमी कम हो जायँगे, जिससे नौकर रखना पड़ेगा। पर 'मैं करूँ, मैं करूँ' कहनेसे काम-धंधा कम हो जायगा और आदमी ज्यादा हो जायँगे। 'तू कर, तू कर' कहनेसे लड़ाई हो जायगी और 'मैं करूँ, मैं करूँ' कहनेसे लड़ाई मिट जायगी।**

कन्या लक्ष्मीरूप होती है। इसलिये कन्याका तिरस्कार, अपमान नहीं करना चाहिये। जैसे ब्राह्मणको भोजन करानेसे पुण्य होता है, ऐसे ही कन्याको भी भोजन करानेका पुण्य होता है। देवीकी उपासना करनेवालोंको भी मैंने कहा है कि **अगर आप देवीकी कृपा चाहते हो तो कुँआरी छोटी-छोटी कन्याओंको भोजन कराओ, मिठाई खिलाओ तो देवी प्रसन्न हो जायगी**।.....भोजन करानेमें नौकरके साथ अथवा मेहमानके साथ भी विषमता मत करो।

*** *** ***

जड़के द्वारा चेतनकी प्राप्ति नहीं होती—यह बात आप लिख लो। जड़का त्याग करोगे तो चेतनकी प्राप्तिके सिवाय और होगा ही क्या! स्वयं चेतन ही चेतनको प्राप्त होता है। इसलिये जीवको ब्रह्मकी प्राप्ति नहीं होती, ब्रह्मको ही ब्रह्मकी प्राप्ति होती है—**'ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति'** (बृहदारण्यक० ४। ४। ६)। जीवभाव तो मिट जाता है। **तत्त्वज्ञान जिज्ञासुको होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदिको अथवा गृहस्थ, साधु आदिको अथवा हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदिको तत्त्वज्ञान नहीं होता।** इसी तरह परमात्माकी प्राप्ति उसको होती है, जो परमात्माको चाहता है। जिसमें ब्राह्मणपनेका अभिमान है, उसको तत्त्वज्ञान अथवा परमात्मप्राप्ति कैसे होगी? उसका ब्राह्मणकी लड़कीके साथ विवाह हो जायगा, समाजमें आदर-सम्मान हो जायगा, पर परमात्मा कैसे मिल जायँगे? यह गहरा विचार करनेकी बात है।

जिसके भीतर जिज्ञासा है, उसको तत्त्वज्ञान हो जायगा, चाहे वह कोई क्यों न हो। जिज्ञासा

केवल ब्राह्मणको ही हो सकती है—ऐसा कायदा नहीं है। जिज्ञासा मुसलमान, ईसाई, यहूदी आदि किसीको भी हो सकती है।

श्रोता—जिसके कर्म अच्छे नहीं हों, बुरे कर्म हों, पाप किये हों, वह भी अगर जिज्ञासु होगा तो प्राप्ति हो जायगी?

स्वामीजी—हो जायगी। गीताजीका प्रमाण है—

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥

(गीता ९। ३०)

'अगर कोई दुराचारी-से-दुराचारी भी अनन्यभक्त होकर मेरा भजन करता है तो उसको साधु ही मानना चाहिये। कारण कि उसने निश्चय बहुत अच्छी तरह कर लिया है।'

बाजारमें कपड़ा उसको मिलेगा, जो कपड़ा चाहता है। क्या ब्राह्मणको कपड़ा मिलेगा? ऐसे ही जो भगवान्‌को चाहता है, उसको भगवान् मिलेंगे। भगवान् भीतरकी असली चाहना देखते हैं। मैं ब्राह्मण हूँ—यह अभिमान परमात्मप्राप्तिमें बाधक होगा। चेतनको ही चेतनकी प्राप्ति होती है। ब्राह्मण क्या चेतनका नाम है? हिन्दू-मुसलमान क्या चेतनके नाम हैं?

*** *** ***

जो परमात्माकी प्राप्ति चाहते हैं, उन्हें अपने-आपको परमात्मप्राप्तिका अधिकारी बनाना चाहिये। इस भावको लेकर मैंने कहा कि भगवान्‌की प्राप्ति उसको होती है, जो भगवान्‌को चाहता है। जो भगवान्‌को चाहता है, उसके भीतर 'मैं भगवान्‌का हूँ', 'मैं जिज्ञासु हूँ'—ऐसा अपना भाव होना चाहिये। यह भाव होनेसे साधन स्वतः-स्वाभाविक होता है।

एक मार्मिक बात है कि चोरी करनेवाला पहले चोर बनता है, फिर चोरी करता है। चोरी करनेपर चोर-भाव दृढ़ होता है। चोर बने बिना वह चोरी नहीं करता। पहले अहंता (मैंपन) बदलती है, फिर आगे क्रिया होती है। बुरा बने बिना कोई बुराई कर नहीं सकता। अहंता बदलनेसे क्रिया बदल जाती है। अगर मुक्ति चाहते हो तो पहले मुमुक्षु बनो। 'मैं भगवान्‌का भक्त हूँ'—ऐसा भाव होनेसे भक्ति सुगम हो जायगी। **'मैं भगवान्‌का हूँ'—ऐसा भाव होनेसे अहंतामें भगवान्‌के साथ सम्बन्ध जुड़ जाता है। फिर भजन बड़ा सुगम और श्रेष्ठ होगा। अहंता बदले बिना भजन बढ़िया नहीं होता। यह सिद्धान्त है कि आप भगवान्‌के हो जाओ तो भगवान्‌की प्राप्ति सुगमतासे होगी, नहीं तो भगवत्प्राप्ति कठिनतासे होगी।** भगवत्प्राप्तिमें होनेवाली कई तरहकी कठिनताओंमें यह मुख्य कठिनता है।

अपने वर्ण-आश्रमका अभिमान बहुत गहरा होता है। अपनेमें ब्राह्मणपनेका अभिमान रहेगा तो भगवत्प्राप्तिमें बड़ी बाधा हो जायगी! इसलिये पहले अपनी अहंता बदलो। यह भगवत्प्राप्तिका बड़ा सुगम, सरल उपाय है। यह नहीं करोगे तो भजन कठिन होगा। 'मैं भगवान्‌का हूँ'—इस प्रकार स्वयंका सम्बन्ध भगवान्‌के साथ होना चाहिये।

एकदम सच्ची सिद्धान्तकी पक्की बात है कि अहंताके बदले बिना जीवन बदलता नहीं। अहंता बदलेगी तो जीवन सब बदल जायगा। कन्या विवाह करनेके बाद अर्थात् 'मैं कुँआरी नहीं हूँ, विवाहिता हूँ'—यह अहंता बदलनेके बाद ससुरालमें रहती है। क्या बिना विवाह किये वह ससुरालमें रह सकती है? नहीं रह सकती। भगवान्‌का भक्त हुए बिना भजन करनेसे शर्म आती है। पर भगवान्‌का भक्त हो जाय तो फिर खुला भजन करता है, शर्म मिट जाती है। फिर भजन स्वतः होता है, स्वाभाविक

होता है। इसलिये अगर भजन करना चाहते हो तो पहले अहंताको बदलो। भगवान्‌का होकर भगवान्‌का नाम जपो—***'होहि राम को नाम जपु'***। भगवान्‌का होकर नामजप करो तो वह जप बहुत विलक्षण होगा। ब्राह्मण बनकर भजन करो तो बढ़िया भजन नहीं होगा। इसलिये भाई-बहनोंसे कहना है कि आप भगवान्‌के बन जाओ। **मैं अच्छा या मन्दा जैसा हूँ, भगवान्‌का हूँ। फिर सब काम ठीक हो जायगा। आपके आचरण, आपके भाव, आपका जीवन अपने-आप सुधर जायगा।**

***　　***　　***

दो तरहकी बात आती है—'**वासुदेवः सर्वम्**' 'सब कुछ वासुदेव है' (गीता ७। १९) और '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**' 'सब कुछ ब्रह्म है' (छान्दोग्य० ३। १४। १)। दो तरहके साधन होते हैं—विवेकप्रधान और श्रद्धाप्रधान। इसका यह अर्थ नहीं है कि विवेकप्रधानमें श्रद्धा नहीं होती और श्रद्धाप्रधानमें विवेक नहीं होता। प्रधानता एककी होती है। विवेककी प्रधानता रखनेवालोंका सिद्धान्त है कि सब कुछ ब्रह्म है, और श्रद्धा (भक्ति, प्रेम)-की प्रधानता रखनेवालोंका सिद्धान्त है कि सब कुछ वासुदेव है। ये दोनों ही मार्ग बड़े श्रेष्ठ हैं, परमात्माकी प्राप्ति करानेवाले हैं, इसमें सन्देह नहीं। दोनोंमें विचार करें तो भक्तिका मार्ग श्रेष्ठ मालूम देता है।

विवेकमार्गमें साधक जड़-चेतनका विवेक करके 'चेतन-चेतन सब परमात्मा हैं'—ऐसा मानकर जड़का त्याग करता है। परन्तु भक्तिमार्गमें साधक जड़-चेतन दोनोंको परमात्मा ही मानता है। '**वासुदेवः सर्वम्**' कहनेका तात्पर्य है कि जड़-चेतन, सात्त्विक-राजस-तामस सब कुछ परमात्मा-ही-परमात्मा हैं।

उपनिषदोंमें '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**' है और गीतामें '**वासुदेवः सर्वम्**' है। उपनिषद् और गीतामें परस्पर थोड़ा मतभेद है। '**वासुदेवः सर्वम्**' सगुणोपासनाकी बात है और '**सर्वं खल्विदं ब्रह्म**' निर्गुणोपासनाकी बात है। निर्गुणोपासनावाले जड़का त्याग करते हैं। इसमें एक सूक्ष्म बात है कि त्याग करनेसे त्याज्य वस्तुका सर्वथा अभाव नहीं होता, प्रत्युत भीतरमें उसकी सूक्ष्म सत्ता बहुत दूरतक रहती है। परन्तु '**वासुदेवः सर्वम्**' में त्याज्य वस्तु कुछ न होनेसे यह सिद्धान्त हमें बढ़िया मालूम देता है। हमारा कोई पक्षपात नहीं है। यह बात तो है कि पहले मेरेमें ज्ञानकी प्रधानता थी, अब भक्तिकी प्रधानता है। गीताका पाठ करते-करते स्वतः मालूम दिया कि सगुणकी प्रधानता है।

भक्तिमार्गकी प्रधानतावाले ज्ञानमार्गकी निन्दा करते हैं और ज्ञानमार्गकी प्रधानतावाले भक्तिमार्गकी निन्दा करते हैं, तो निन्दाका अंश हमें अच्छा नहीं लगता। कल्याण दोनोंसे ही होता है—

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भव संभव खेदा॥

(मानस, उत्तर० ११५। ७)

ज्ञानका विवेचन करना सुगम है, जबकि भक्तिका विवेचन करना कठिन है—

निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन जान नहिं कोइ।
सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ॥

(मानस, उत्तर० ७३ ख)

परन्तु भक्तिका मार्ग सुगम है, जबकि ज्ञानका मार्ग कठिन है—

भगति कि साधन कहउँ बखानी। सुगम पंथ मोहि पावहिं प्रानी॥

(मानस, अरण्य० १६। ३)

'ग्यान पंथ कृपान कै धारा'

(मानस, उत्तर० ११९। १)

रामायणके उत्तरकाण्डमें ज्ञानको दीपक और भक्तिको मणि बताया गया है। दीपक तो हवासे बुझ जाता है, पर मणि नहीं। ज्ञानमें साधक स्वयं अपना उद्धार करता है—**‘उद्धरेदात्मनात्मानम्’** (गीता ६। ५), पर भक्तिमें भगवान् उद्धार करते हैं—**‘तेषामहं समुद्धर्ता’** (गीता १२। ७)। ज्ञानी तो आरम्भमें ही बड़ा बन जाता है कि ‘मैं ब्रह्म हूँ’, पर भक्त अन्ततक बालक बना रहता है!

*** *** ***

भगवान्से रात-दिन एक ही प्रार्थना करो कि ‘हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं’। मनसे हरदम कहते रहो। भगवान्से यही माँगो कि आपको भूलूँ नहीं। भगवान्की कृपासे सब काम ठीक होगा। आपको पता ही नहीं लगेगा, अनजानपनेमें भी आप सन्त हो जाओगे! जैसे शबरीको पता नहीं लगा कि मेरेमें भक्ति है। भगवान्को शबरीसे कहना पड़ा—***‘सकल प्रकार भगति दृढ़ तोरें’*** (मानस, अरण्य० ३६। ४)।

भक्तोंकी बात भगवान् ही जानते हैं, दूसरे जानते ही नहीं! भगवान् संसारकी सेवा करते हैं, और भगवान्की सेवा करते हैं भक्त! भगवान्की कमीको भक्त दूर करते हैं! भक्तोंको खुराक मिलती है भगवान्से, और भगवान्को खुराक मिलती है भक्तोंसे! भक्तोंको देखकर भगवान् राजी होते हैं, और भगवान्को देखकर भक्त राजी होते हैं! भक्तोंके इष्टदेव भगवान् होते हैं, और भगवान्का इष्टदेव भक्त होता है! अर्जुनको भगवान् कहते हैं कि तू मेरा इष्टदेव है—**‘इष्टोऽसि मे दृढमिति’** (गीता १८। ६४)!

एक बार भगवान् श्रीकृष्ण बैठे ध्यान कर रहे थे। युधिष्ठिरजीने पूछा कि महाराज, दुनिया आपका ध्यान करती है, आप किसका ध्यान कर रहे हो? भगवान् बोले—

शरतल्पगतो भीष्मः शाम्यन्निव हुताशनः।
मां ध्याति पुरुषव्याघ्रस्ततो मे तद्गतं मनः॥

(महाभारत, शान्ति० ४६। ११)

‘राजन्! बाण-शय्यापर पड़े हुए पुरुषसिंह भीष्म, जो इस समय बुझती हुई आगके समान हो रहे हैं, मेरा ध्यान कर रहे हैं। इसलिये मेरा मन भी उन्हींमें लगा हुआ है।’

शरणानन्दजी महाराजको किसीने कहा कि हम सन्तोंकी सेवा करते हैं। शरणानन्दजी बोले कि सन्तोंकी सेवा धूल करते हो! सन्तोंकी सेवा करते हैं भगवान्! तुम सेवाको क्या समझो! भगवान्की सेवा सन्त करते हैं, और सन्तोंकी सेवा भगवान् करते हैं। एकनाथजीकी सेवाको देखकर भगवान् भी एकनाथजीकी सेवामें लग गये! भगवान्को भक्तोंकी सेवा करनेका बड़ा शौक है! जैसे बालकका पालन करनेमें माँको आनन्द आता है, ऐसे ही भगवान्को भक्तोंकी सेवा करनेमें आनन्द आता है!

संसारमें जितने सदाचार हैं, सद्‌गुण हैं, अच्छे भाव हैं, वे सब सन्तोंकी कृपासे हैं। जहाँ सन्त आते-जाते हैं, रहते हैं, वह घर, मुहल्ला, गाँव पवित्र हो जाता है।

*** *** ***

सावधान होकर सच्चे हृदयसे भगवान्में लग जाओ। भगवान्के सिवाय और कोई सहारा देनेवाला है नहीं। संसारमें प्रेम करनेवाले तो कई हैं, पर सहारा देनेवाला कोई नहीं है। कोई सच्चे हृदयसे सहारा देना चाहता नहीं, और देना चाहे तो भी दे सकता नहीं। इसलिये संसारका भरोसा मत करो, न आदमियोंका, न जीवोंका, न पदार्थोंका, न परिस्थितिका। कोई भी सदा रहनेवाला नहीं है।

संवत् १९९० की बात है। हमारे विद्यागुरुजी महाराज (पं० श्रीदिगम्बरानन्दजी) शापविमोचन-सहित विष्णुसहस्रनामका पाठ किया करते थे। एक दिन सुबह वे बोले कि रातको सपनेमें विष्णु भगवान्‌ने दर्शन दिये। मैंने भगवान्‌से कहा कि 'महाराज, आप कठोर बहुत हो! जल्दी राजी नहीं होते'। भगवान् बोले कि 'अच्छा, तो जो जल्दी राजी हो, ऐसा कोई देख ले, जा'। मैं चुप हो गया, कुछ बोल नहीं सका। दूसरा कोई हो तो जायँ! इसलिये भगवान् अच्छे हों या मन्दे, ठीक हों या बेठीक, अनुकूल हों या प्रतिकूल, वे एक ही हैं। उनके सिवाय कोई है ही नहीं। अब किसके आगे कहें? कहाँ शिकायत करें?

इसलिये सब भाई-बहनोंसे कहना है कि सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाओ। संसारमें सब समय सदा साथ रहनेवाला दूसरा कोई मिलेगा नहीं। एक परमात्माके सिवाय सदा साथ रहनेवाला कोई है नहीं, हुआ नहीं, होगा नहीं, हो सकता नहीं। इसलिये सच्चे हृदयसे 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। वे परमात्मा कठोर दीखते तो हैं, पर हैं नहीं।

नारिकेलसमाकारा दृश्यन्तेऽपि हि सज्जनाः।
अन्ये बदरिकाकारा बहिरेव मनोहराः॥

(हितोपदेश १। ९५)

'सज्जन पुरुष नारियलकी तरह भीतरसे कोमल तथा सुन्दर होनेपर भी बाहरसे कठोर तथा जटिल दीखते हैं। परन्तु दुर्जन पुरुष बेरकी तरह भीतरसे कठोर तथा असुन्दर होनेपर भी बाहरसे कोमल तथा सुन्दर दीखते हैं।'

संसारमें केवल दिखावटी प्रेम करनेवाले हैं, असली नहीं हैं। भगवान् असली हमारे हैं। अपने प्यारे जितने भगवान् हैं, उतना अपना कोई नहीं है। शरीर अच्छा दीखता है, पर वह भी अपना नहीं है। **मैंने पुस्तकें भी पढ़ी हैं, सन्तोंका संग भी किया है, जहाँ कहीं अच्छी बातें सुननेको मिलीं, वहाँ गया भी हूँ। बहुत बातें देख करके, पढ़ करके, सुन करके, समझ करके, विचार करके मैंने निर्णय किया है कि भगवान्‌के समान अपना कोई नहीं है।**

उमा राम सम हित जग माहीं। गुरु पितु मातु बंधु प्रभु नाहीं॥

(मानस, किष्किन्धा० १२। १)

भगवान्‌के सिवाय सच्चा मित्र, सहायता करनेवाला मालिक और कोई मिलेगा नहीं। वह एक ही है। उसी एक परमात्माको अल्ला, खुदा, जिहोवा, गॉड, ईश्वर आदि अलग-अलग नामोंसे कहते हैं।

पाँच-सात लड़के मिल गये और आपसमें विवाद करने लगे। किसीने कहा कि हमारे पिताके समान कोई नहीं है। किसीने कहा कि नहीं, हमारे चाचाके समान कोई नहीं है। किसीने कहा कि नहीं, हमारे बड़े भाईके समान कोई नहीं है। इस तरह आपसमें बड़ा विवाद हुआ। सब लड़ने लग गये। आगे जाकर देखा तो वह एक ही व्यक्ति है! वह एक ही किसीका पिता लगता है, किसीका चाचा लगता है, किसीका बड़ा भाई लगता है, किसीका ताऊ लगता है, किसीका मामा लगता है, किसीका नाना लगता है! ऐसे ही परमात्मा हैं।

जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥

(मानस, बाल० २४१। २)

जो भगवान् हमारे हैं, वही सबके हैं और जो सबके हैं, वही हमारे हैं। **जो किसीका हो और**

किसीका नहीं हो, कभी हो और कभी नहीं हो, किसी समय हो और किसी समय नहीं हो, किसीमें हो और किसीमें नहीं हो, वह भगवान् नहीं होता।

*** *** ***

हरदम भगवान्‌को याद करो। उनका जो नाम-रूप आपको प्रिय लगे, वैसा मानो। एक कायदा तो यह है कि पहले भगवान् दर्शन दे दें, फिर हम उस असली रूपका ध्यान करें। एक कायदा यह है कि हम जैसे रूपका ध्यान करें, भगवान् उसको अपना मान लें। अगर भगवान् पहले दर्शन दे दें और हमसे भूल हो गयी तो मुश्किल हो जायगी! परन्तु हम अपने मनसे किसी रूपका ध्यान करें तो भूल होनेपर भी हमारेपर उसकी जिम्मेवारी नहीं होगी।

भगवान् दो व्यक्तियोंकी मान्यतामें भी एक समान नहीं मिलेंगे। अगर सभी चित्रकार हों और चित्र बनाकर लायें तो दो व्यक्तियोंका भी चित्र आपसमें मिलेगा नहीं। अलग-अलग रंग, ढंग, पोशाक मिलेगी। एक लड्डूगोपाल भी सबका एक समान नहीं होगा। हम जितनी अटकल लगायेंगे, वे सब रद्दी हो जायँगी! परन्तु भगवान्‌की ऐसी विशेष कृपा है कि आप भगवान्‌का जैसा चिन्तन करो, भगवान् उसको अपना मान लेते हैं। यह भगवान्‌का स्वभाव है।

आप जिस रूपका ध्यान करेंगे, भगवान् उसीको अपना मान लेंगे। जब भगवान्‌के दर्शन होंगे, तब पहले भगवान् ठीक उसी रूपसे दर्शन देंगे, फिर अपना असली रूप दिखा देंगे, अपना असली रहस्य जना देंगे—*'सोइ जानइ जेहि देहु जनाई'* (मानस, अयोध्या० १२७। २)**।** यह मैंने अच्छे सन्त-महात्माओंसे सुना है। इसलिये आपके मनमें जैसा जँचे, वैसा ध्यान करो। भगवान् साकार भी हैं, निराकार भी हैं, नराकार (राम, कृष्ण आदि) भी हैं और नीराकार (गंगाजी) भी हैं! एक सज्जन थे, उनसे गंगाजी बातें करती थीं! अतः आप जैसा मानो, भगवान् वैसे ही हैं। आपके ऊपर निर्भर है। आजतक आपने जैसा पढ़ा है, सुना है, देखा है, समझा है, अनुमान किया है, वैसा ही रूपका ध्यान करो। भगवान् उसको अपना मान लेंगे। जो जैसे भगवान्‌के शरण होता है, भगवान् वैसे ही बन जाते हैं—**'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** (गीता ४। ११)। यह भगवान्‌की विलक्षणता है। अन्यमें ऐसी ताकत ही नहीं है।

भगवान् भक्तके वशमें हैं। भक्त जैसा चाहता है, भगवान् वैसा बन जाते हैं। एक भक्तने भगवान्‌को खूब याद किया तो उसको एक सन्तके दर्शन हुए। उसने सन्तोंसे पूछा कि मैं तो भगवान्‌को याद करता था, फिर बीचमें सन्त कैसे आ गये? उन्होंने कहा कि तुम्हारी सन्तोंके प्रति ज्यादा श्रद्धा-भक्ति थी, इसलिये भगवान् सन्तका रूप धारण करके तुम्हारे पास आये। हमारे अनुकूल ऐसा बननेवाला भगवान्‌के सिवाय और कौन है?

*** *** ***

गीतामें दो मार्गोंका वर्णन आया है—शुक्लमार्ग और कृष्णमार्ग—**'शुक्लकृष्णे गती ह्येते'** (गीता ८। २६)। शुक्लमार्गमें प्रकाश है और कृष्णमार्गमें अँधेरा है। अँधेरा कामनासे होता है। संसारकी कामनाके रहते हुए मनुष्य अँधेरेमें रहता है। भोगकी कामना, संग्रहकी कामना, मानकी कामना, बड़ाईकी कामना, जीनेकी कामना आदि अनेक कामनाएँ हैं। **इन कामनाओंके रहनेके कारण भजन-ध्यान करनेवालोंके हृदयमें भी प्रकाश नहीं होता।** परन्तु कामनाके छूटते ही हृदयमें प्रकाश हो जाता है। जितनी-जितनी कामना कम होगी, उतना-उतना प्रकाश ज्यादा होगा। कामना छूटनेके बाद मनुष्य दिनमें मरे चाहे रातमें मरे, शुक्लपक्षमें मरे चाहे कृष्णपक्षमें मरे, उत्तरायणमें मरे चाहे दक्षिणायनमें मरे, कभी मरे, वह शुक्लमार्गमें ही जाता है। शुक्लमार्गमें जानेवाला मनुष्य फिर लौटकर संसारमें नहीं आता।

*** *** ***

अनुकूलता-प्रतिकूलता तो कर्मोंके अधीन है, पर आप करते हैं इच्छा! आप कितनी ही इच्छा करो, सांसारिक भोग जितने मिलने हैं, उतने ही मिलेंगे और नहीं मिलनेवाले नहीं मिलेंगे। इच्छाके साथ भोगोंका सम्बन्ध नहीं है। भोगोंका सम्बन्ध पहले किये हुए कर्मोंके साथ है। इच्छा ज्यादा हो अथवा कम हो, जितना मिलना है, उतना ही मिलेगा।

क्या होना चाहिये? जो भगवान् करें, वही होना चाहिये। क्या नहीं होना चाहिये? जो भगवान् नहीं करें, वह नहीं होना चाहिये। अतः अपनी इच्छा न रखें, भगवान्‌की इच्छामें अपनी इच्छा मिला दें। अगर आज यह बात मान लें कि भगवान् जो भेजें, वही ठीक है तो आज निहाल हो जायँ! आपकी आफत, दुःख, सन्ताप, जलन सब मिट जाय!

जैसे, आप खेतमें जाकर दिनभर काम करते हैं तो खेतका मालिक आपके कामके अनुसार पैसा देता है। अगर काम करनेसे ही पैसा मिलता हो तो पहाड़में जाकर अपनी मरजीसे दिनभर पत्थर ढोओ तो पसीना आ जायगा, पर क्या पैसा मिलेगा? एक कौड़ी नहीं मिलेगी। अगर ऐसा मानें कि खेतका मालिक पैसा देता है तो खेतमें जाकर बैठ जाओ। क्या वह पैसा देगा? नहीं देगा। कारण कि वह पैसा कामके अनुसार देता है। अतः काम करनेसे पैसा मिलता है—यह भी नहीं कह सकते, और मालिकसे पैसा मिलता है—यह भी नहीं कह सकते। दोनों बातें मिलेंगी, तब पैसा मिलेगा। इसलिये आप भगवान्‌की, सन्त-महात्माओंकी, शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार काम करो, उनकी आज्ञाके विरुद्ध काम मत करो, तब आपका काम ठीक होगा। अपनी इच्छासे, मनचाहा काम करोगे तो शान्ति नहीं मिलेगी।

पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यं नेच्छन्ति मानवाः।
न पापफलमिच्छन्ति पापं कुर्वन्ति यत्नतः॥

'मनुष्य पुण्यका फल (सुख) तो चाहते हैं, पर पुण्य करना नहीं चाहते! वे पापका फल (दुःख) तो नहीं चाहते, पर पाप यत्नपूर्वक करते हैं!'

आप अपनी मरजीसे कर्म करोगे तो फल आपकी मरजीसे नहीं मिलेगा, प्रत्युत कर्मके अनुसार मिलेगा। इसलिये 'करनेमें सावधान रहो और होनेमें प्रसन्न रहो'—ये दो बातें याद कर लो।

डरते रहो यह जिन्दगी बेकार न हो जाय,
सपने में भी किसी जीव का अपकार न हो जाय।

डरना दैवी सम्पत्ति नहीं है। इसलिये यहाँ 'डरते रहो' कहनेका अर्थ भयभीत होना नहीं है। इसका अर्थ है—सावधान रहो। हरदम सावधान रहो कि कोई न करनेलायक काम हमारेसे न हो जाय। आपके द्वारा किसी भी जीवका अपकार होगा तो उसका अनिष्ट फल मिलेगा ही। जैसे बच्चा पहले खेल-कूदमें शरीर मैला कर लेता है, पर जब माँ रगड़-रगड़कर स्नान कराती है, तब वह चीं-चीं करके रोता है! ऐसे ही आप पाप करते हो तो उसका फल भुगताकर भगवान् आपको शुद्ध करते हैं।

कुआँ खोदनेवाला और मकान बनानेवाला—दोनों आदमी पहले समान स्थल (भूमि)-पर रहते हैं। कुआँ खोदनेवाला खोदते-खोदते पचास हाथ नीचे चला जाता है, और मकान बनानेवाला ईंट जोड़ते-जोड़ते पचास हाथ ऊँचा चला जाता है। इसलिये आप दूसरोंके हितके लिये काम करो तो आप ऊँचे चले जाओगे। पाप करोगे, दूसरोंको दुःख दोगे तो अधोगतिमें चले जाओगे—इसमें सन्देह

नहीं है।

पहले किये हुए कर्मोंके फलके अनुसार सुखदायी-दुःखदायी परिस्थिति आयेगी ही। पहले किये कर्मोंका फल भोगना पड़ेगा। बीमारी भी आ सकती है, धन भी जा सकता है, पुत्र भी मर सकता है, पर उसकी परवाह न करके जो भगवान्‌के भजनमें लगा है, वह निहाल हो जायगा, सबसे ऊँचा उठ जायगा।

*** *** ***

श्रोता—आजकल गायको इंजेक्शन लगाकर दूध दुहते हैं, इस विषयमें आपका क्या कहना है?

स्वामीजी—गायको इंजेक्शन लगाकर दुहना गौहत्या करना है! यह भयंकर पाप है! सुई लगाकर दुहा हुआ दूध पीना गायका खून पीनेके समान है! वह दूध नहीं है, खून है। उसे काममें नहीं लेना चाहिये। दूध वह है, जो गाय अपनी प्रसन्नतासे दे। जो सुई लगाकर गाय दुहते हैं, वे राक्षस हैं। वे गौभक्षक हैं, हिन्दू कहलानेयोग्य नहीं हैं।

सुई लगानेसे गायको बड़ा कष्ट होता है। कसाई तो गायको एक बार मारता है, पर बार-बार सुई लगाना गायको बार-बार मारना है। यह एक बार मारनेकी अपेक्षा ज्यादा पाप है!

ज्यादा दूध पानेके लोभसे गायको पीड़ा देना बहुत बड़ा पाप है! अपने स्वार्थके लिये दूसरेको पीड़ा देनेके समान अधम, नीच काम कोई है ही नहीं—***'पर पीड़ा सम नहिं अधमाई'*** (मानस, उत्तर० ४१। १)। जो दूसरेके दुःखसे दुःखी होता है, उसको अपने दुःखसे दुःखी नहीं होना पड़ता। उसका दुःख सदाके लिये मिट जाता है। परन्तु जो दूसरेको दुःख देता है, उसको तरह-तरहका दुःख मिलता है। जैसे ***'एक गुना दान, सहस्र गुना पुण्य'***—एक रुपयेके दानसे हजार रुपयोंका पुण्य होता है, ऐसे ही गायको एक सुई लगाते ही आपके लिये हजारों सुइयाँ तैयार होती हैं! वे सुइयाँ चुभेंगी तो आपको भयंकर दुःख भोगना पड़ेगा.....पड़ेगा.....पड़ेगा! उस भयंकर दुःखसे बचानेके लिये आपसे प्रार्थना की जाती है कि गायको सुई लगाना छोड़ दो।

*** *** ***

श्रोता—आप जड़-चेतनके विभागकी जो बात कहते हैं, वह हमें बहुत अच्छी लगती है; परन्तु इस विभागको अलग-अलग समझकर चलनेवाले लोग कम दिखायी देते हैं। ऐसी स्थितिमें हमारा उत्साह नहीं होता! क्या करना चाहिये?

स्वामीजी—नयी बात मिले तो उसमें उत्साह ज्यादा होना चाहिये! ऐसे चलनेवाले कम हैं, यह बात आप ठीक कहते हैं। सन्त-महात्माओंमें भी ऐसे चलनेवाले कम हुए हैं। परन्तु इसमें उत्साह कम हो, यह बात हमें नहीं सुहाती! हमें तो नयी बात मिलती है तो उत्साह ज्यादा आता है। एक छोटी-सी बातपर हमें बहुत विशेष उत्साह आता है कि **जो वस्तु मिलती है और बिछुड़ती है, वह अपनी नहीं होती।** यह बात मामूली नहीं है, हद कर दी है! बहुत दामी बात है! जितनी महिमा करें, उतनी थोड़ी है! ऐसी नयी बात मिलती नहीं है। इसमें ऐसा उत्साह आना चाहिये कि दुनियाभरमें इसपर चलनेवाला सबसे पहला मैं होऊँगा!

एक परमात्मा मिलने-बिछुड़नेवाले नहीं हैं। उनके सिवाय सब मिलने और बिछुड़नेवाले हैं। यह बात इतनी विलक्षण है कि इसके जोड़ेकी बात हमें मिली नहीं! आध्यात्मिक उन्नतिकी यह पहली बात है! इस एक बातमें संसारमात्रका त्याग हो जाता है! ऐसी स्पष्ट बात आपने किसी सत्संगमें, किसी व्याख्यानमें, किसी पुस्तकमें, किसी शास्त्रमें देखी हो तो बताओ! मैं कहता हूँ कि किसी पुस्तकमें

नहीं है! आजतक मैंने कहीं लिखी हुई देखी नहीं है। मैंने वर्षोंतक पढ़ाई की, पर ऐसी बात मेरेको कहीं मिली नहीं! मिली हुई वस्तु अपनी नहीं होती—यह आधी बात तो मिलती है, पर मिली हुई और बिछुड़नेवाली वस्तु अपनी नहीं होती—यह बात कहीं है ही नहीं! ब्रह्माजी भी इस बातको काट नहीं सकते! ऐसी बात मिलनेपर विशेष उत्साह होना चाहिये, आनन्द आना चाहिये! हमें ऐसी बात छहों दर्शनोंमें नहीं मिली! शास्त्रोंमें गहरी-गहरी बातें मिलती हैं, पर ऐसी बात नहीं मिली!

संसार बाधक नहीं है, उसका सम्बन्ध बाधक है—यह भी बहुत मार्मिक बात है, जो हमें वर्षोंतक पढ़ाई करनेपर भी नहीं मिली! ऐसे ही एक मार्मिक बात है कि **अनन्त ब्रह्माण्डोंमें तिल-जितनी चीज भी अपनी नहीं है! सिवाय भगवान्‌के कोई अपना नहीं है।** यह बातें मामूली नहीं है। ऐसी बातें चुन-चुनकर हृदयमें जमा कर लेनी चाहिये। इन बातोंको समझो और आदर दो। इनका हृदयमें आदर होगा तो अपने-आप इन बातोंका पालन होगा, पालन करना नहीं पड़ेगा।

*** *** ***

हमारे पास एक संसारकी चीज है, एक परमात्माकी चीज है। संसारकी चीजको ज्यादा महत्त्व दोगे तो परमात्माकी प्राप्ति नहीं होगी। परमात्माकी प्राप्तिको महत्त्व दोगे तो जो आप परमात्माके अंश हो, उसको ज्यादा महत्त्व देना पड़ेगा। ज्यादा महत्त्व नहीं दोगे तो परमात्माकी प्राप्ति नहीं होगी।

श्रोता—यदि परमात्मा हमसे प्रेम करते हैं तो फिर वे आकर हमसे मिल क्यों नहीं लेते?

स्वामीजी—वे तो मिलनेके लिये तैयार बैठे हैं! भाईजी (श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)-ने कहा था कि भगवान् तो मिलनेके लिये मरते हैं! अगर भगवान् अपनी तरफसे आकर मिलें तो आप मानोगे ही नहीं। गणेशजीने दूध पी लिया तो लोगोंने प्रचार किया यह झूठी बात है। आप उल्टी बात तो मान लोगे, पर सीधी बात नहीं मानोगे!

एक बार लोगोंने कहा कि अगर सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका) कह दें कि ये भगवान् हैं तो हम मान लेंगे; क्योंकि लोगोंका विश्वास था कि ये सत्यवादी हैं, झूठ नहीं बोलते। इस बातको उनके विपक्षी भी मानते थे। उन्होंने सेठजीसे कहा कि आप भगवान्‌के दर्शन करा दो। सेठजीने कहा कि तुम मानोगे नहीं। वे बोले कि आप कह दो तो हम मान लेंगे। सेठजीने सूर्यकी तरफ संकेत करके कहा कि ये सूर्य भगवान् हैं। लोग बोले कि ये तो हम रोज देखते हैं!

शरीर मिला है और छूटेगा—यह बात आप मानते हो क्या?

श्रोता—मानते हैं।

स्वामीजी—मानते हो तो फिर लुगाई मर जाय, भाई मर जाय, बेटा मर जाय तो दुःख नहीं होना चाहिये। दुःख होता है कि नहीं?

श्रोता—दुःख होता है।

स्वामीजी—दुःख होता है तो फिर माना कहाँ है? मान लो तो निहाल हो जाओगे! अगर आप भगवान्‌को अपना मान लो तो दुःखी कैसे होओगे? एक करोड़पति-अरबपति धनी हमारा हो जाता है तो मनमें एक गरमी आती है! भगवान्-जैसा अपना हो जाय, फिर किस बातका दुःख? भगवान्‌के सिवाय कोई सदा साथ रहनेवाला नहीं है। भगवान् कहते हैं—'**सर्वस्य चाहं हृदि सन्निविष्टः**' (गीता १५। १५) 'मैं सम्पूर्ण प्राणियोंके हृदयमें स्थित हूँ'। क्या आप मानते हो कि मेरे भीतर भगवान् हैं? जो बात सच्ची है, उसको जितना मानोगे, उतना आपका दुःख मिटेगा, उतना आप सुखी होओगे। जितना आपने माना है, उतने आप सुखी हुए हो, आपका दुःख मिटा है—यह आपका अनुभव है।

अगर दु:ख न मिटा हो तो यहाँ सत्संगमें इतने आदमी इकट्ठे क्यों हुए हैं? आप मानते तो हो, पर पूरा नहीं मानते।

शरीर मिला है और बिछुड़ जायगा, इसलिये यह अपना नहीं है—इतनी बात मान लो। माननेमें न आये तो व्याकुल होकर भगवान्‌को पुकारो। भगवान्‌की कृपासे माननेमें आ जायगी।

*** *** ***

श्रोता—आजके युगमें भगवत्प्राप्तिके लिये क्या लड़कियाँ कुँआरी रहकर, घर छोड़कर साधन-भजनमें लग सकती हैं?

स्वामीजी—अच्छा संग मिले तो ऐसा कर सकती हैं, पर आजके जमानेमें कहीं भी अच्छा संग मिल जाय—ऐसा हमें दीखता नहीं है। वे अविवाहित रहकर आध्यात्मिक उन्नति कर सकें—ऐसा आजकल होना कठिन है। इसलिये **स्त्रियोंको विवाह न करनेकी सम्मति मैं नहीं देता हूँ।** घरसे बाहर जाकर वे ठीक कर लेंगी—यह असम्भव-जैसी बात है। उन्हें घरमें रहते हुए ही साधन करना चाहिये। वे माँ-बापके पासमें, भाईके पासमें उनकी देख-रेखमें रहें और भजन करें तो कर सकती हैं।

आजकल व्याख्यानमें, सत्संगमें भी जीवके कल्याणकी ऐसी वास्तविक बातें बहुत कम मिलती हैं। लोग बिना जाने दूसरोंको उपदेश देने लग जाते हैं! असली बातें मिलती नहीं। व्याख्यान देना एक पेशा बन गया है! सच्ची बात बतानेवाले, तत्त्वको जाननेवाले बहुत कम हो गये। परमात्माकी प्राप्ति बहुत सुगमतासे हो जाय, ऐसी बातें हैं। पर सच्चे हृदयसे परमात्मप्राप्ति चाहते ही नहीं! न स्त्रियाँ चाहती हैं, न पुरुष चाहते हैं! सच्चाई बहुत कम हो गयी!

श्रोता—आप इतने ऊँचे दर्जेकी बात कहते हैं, फिर भी हमारे भीतर बात जमती क्यों नहीं?

स्वामीजी—कारण कि आपके भीतर अपने कल्याणकी चाहना है ही नहीं!

संतदास संसार में, कई गुग्गु कई डोड।
डूबन को साँसो नहीं, नहीं तिरन को कोड॥

'गुग्गु (उल्लू)-को तो दिनमें नहीं दीखता और डोड (एक प्रकारका बड़ा कौआ)-को रातमें नहीं दीखता। परन्तु संसारमें कई ऐसे लोग हैं, जिनको न दिनमें दीखता है और न रातमें दीखता है अर्थात् अपने उद्धारकी तरफ उनकी दृष्टि कभी जाती ही नहीं। उनमें न तो अपने डूबने (पतन होने)-की चिन्ता होती है और न तैरने (अपने उद्धार करने)-का उत्साह होता है।'

मेरेको बहुत उत्साह आता है, पर कोई मिलता ही नहीं! जिसमें कल्याणकी सच्ची चाहना हो, वह आये! बहुत सुगमतासे लाभ हो सकता है।

*** *** ***

देखो भाई, आपको जँचे या न जँचे, यह बात अलग है, मेरेसे अगर पूछें तो मनुष्यके लिये परमात्माकी प्राप्तिका मार्ग अभी जितना खुला हुआ है, वैसा खुला हर समय नहीं मिलेगा! यह मेरी पक्की धारणा है। यह बात कह सकता हूँ कि बहुत विलक्षण-विलक्षण बातें आज हमारे सामने हैं, जैसी पहले नहीं थीं! वैसी स्पष्ट आगे भी रहना कठिन है। मेरी धारणासे अभी मौका बहुत बढ़िया आया है। ऐसा मौका पहले नहीं आया था—यह मैं कह सकता हूँ! शास्त्रोंकी बातें भी बहुत अच्छे ढंगसे आयी हुई हैं, अच्छी तरह बतायी हुई हैं। उनका भी विवेचन बहुत बढ़िया हुआ है। ऐसा हर समयमें नहीं होता। परन्तु कल्याणकी जोरदार इच्छाके बिना केवल बातोंसे काम नहीं होगा, चाहे कितना ही बढ़िया मौका आये! जैसे भूखके बिना मनुष्य रोटी खा नहीं सकता, प्यासके बिना जल

पी नहीं सकता, नींदके बिना सो नहीं सकता, ऐसे ही परमात्मप्राप्तिकी जोरदार इच्छा हुए बिना लाभ नहीं उठा सकता। इसलिये मेरी प्रार्थना है कि आप भीतरसे अपने कल्याणकी इच्छाको जाग्रत् करो। सच्चे हृदयसे परमात्मामें लग जाओ और 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। जैसे बच्चा कोई वस्तु पानेके लिये माँके पीछे पड़ जाता है, ऐसे भगवान्‌के पीछे पड़ जाओ कि 'हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं'। शंकरजी भी भगवान्‌से कहते हैं कि मैं तो बार-बार माँगूँगा, पर आप गुस्सा नहीं करना, खुश होकर देना—

बार बार बर मागउँ हरषि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायनी भगति सदा सतसंग॥

(मानस, उत्तर० ७। १४ क)

परमात्मा अपने हैं, उनके सिवाय शरीर-मन-बुद्धि-इन्द्रियाँ आदि कोई भी अपना नहीं है.....नहीं है.....नहीं है! न अपना है, न अपने लिये है। भगवान् अपने हैं और अपने लिये हैं। शास्त्रोंमें यह बात आयेगी कि शरीर परमात्मप्राप्तिके लिये मिला है। परन्तु यह गहरी बात नहीं है। शरीर अपने कल्याणके लिये नहीं है। शरीर आदि सामग्री केवल संसारकी सेवाके लिये ही है, अपने लिये बिलकुल नहीं है.....बिलकुल नहीं है.....बिलकुल नहीं है! केवल संसारकी सेवाके लिये माननेपर कामना, ममता और अहंताका त्याग सुगम हो जायगा। अपने लिये माननेपर ही इनका त्याग कठिन होता है। इसलिये सबकी सेवा करो, पर अपने लिये नहीं। अपने लिये कुछ भी करना है ही नहीं। केवल सेवा करनी है, इसके सिवाय कुछ नहीं करना है।

ऐसी विलक्षण बातें अभी मिली हैं, जिनसे जल्दी कल्याण हो सकता है, इसमें सन्देह नहीं है। अपने लिये नहीं है—यह खास जाननेकी बात है। जबतक अपनी और अपने लिये मानेंगे, तबतक हमारी भूल मिटेगी नहीं। स्थूल, सूक्ष्म और कारणशरीर तथा इनसे होनेवाली क्रिया, चिन्तन और समाधि—तीनों ही अपने लिये नहीं हैं, प्रत्युत संसारके लिये हैं। मिलने और बिछुड़नेवाली चीज अपनी और अपने लिये नहीं होती। परन्तु भगवान् सदा आपके साथ रहते हैं। वे सर्वसमर्थ होते हुए भी आपको छोड़नेमें असमर्थ हैं! वे आपका त्याग कभी कर सकते ही नहीं। अगर भगवान् आपका त्याग कर दें तो आप दूसरे भगवान् हो जायँगे अर्थात् दो भगवान् हो जायँगे, एक भगवान् और एक आप!

अभी बहुत ही सुन्दर मौका है। ऐसा मौका बार-बार नहीं मिलेगा। यह बात मैं अपनी धारणासे ठीक कहता हूँ। मेरेको जैसा सत्य दीखता है, वैसा कहता हूँ। इसलिये सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाओ। भाइयोंसे, बहनोंसे प्रेमसे, आदरसे और आग्रहसे मैं कह रहा हूँ कि अभी बड़ा सुन्दर मौका है। आप सच्चे हृदयसे अपने कल्याणके लिये तैयार हो जायँ तो जरूर कल्याण होगा, सन्देह नहीं है। कोई पूछे कि क्यों? तो इसका उत्तर है कि जिसका त्याग करना चाहिये, उसका प्रतिक्षण त्याग हो रहा है और जिसको प्राप्त करना चाहते हैं, वह नित्य प्राप्त है!

अभी परमात्माकी प्राप्तिकी युक्तियाँ, साधन बहुत विशेषतासे प्रकट हुए हैं। इसलिये जल्दी-से-जल्दी लग जाओ। सबका उद्धार जरूर होगा! सबके उद्धारके लिये भगवान्‌की कृपा हो रही है! आप किसी वर्ण, आश्रम, सम्प्रदाय, धर्मके हों, केवल अपने कल्याणकी जोरदार इच्छा होनी चाहिये, फिर सब अपने-आप हो जायगा। इसलिये प्रार्थना है कि अभी मौका चूको मत।

जो वस्तु मिली है और बिछुड़ जायगी, उसको अपनी नहीं मानो तो आपका कल्याण हो जायगा। जितनी भी सामग्री मिली है, सब सेवा-सामग्री है, भोग-सामग्री नहीं। उसको भोग-सामग्री मान लिया, यही पहली गलती है। **भगवान्‌को अपना समझना सत्संग है, और उनके सिवाय किसीको भी अपना**

समझना कुसंग है। भगवान्‌के सिवाय संसारमें अपना कोई नहीं है.....कोई नहीं है.....कोई नहीं है! सेवाके लिये सब अपने हैं, पर अपने लिये कोई अपना नहीं है।

*** *** ***

श्रोता—भोगोंकी आसक्ति मिटानेका सरल उपाय बतायें।

स्वामीजी—पारमार्थिक साधनोंमें खास बात है कि लगन जितनी जोरदार होगी, उतना ही साधक आगे बढ़ेगा। जैसे भोजनकी रुचि हो जाय तो भोजन अच्छा लगता है, प्यास लगनेपर जल अच्छा लगता है, ऐसे ही साधनकी रुचि भीतरसे हो जाय तो उपाय काम आता है। भीतरकी रुचि पैदा होगी, तब बाहरका उपाय काम करेगा। भीतरकी रुचिके बिना उपाय काम नहीं करता। केवल जोरदार इच्छा हो जाय तो बिना उपायके भी आपकी भोगोंकी इच्छा अपने-आप मिट जायगी! इसलिये आपसे प्रार्थना है कि केवल अपनी लगन बढ़ाओ।

भगवान्‌ने अपना कल्याण करनेके लिये ही मनुष्यशरीर दिया है, इसलिये इस बातकी पूर्ति करनेकी भगवान्‌की इच्छा है! अगर आपकी लगन हो तो जरूर पूर्ति होगी। कोई बतानेवाला मिल जायगा। बतानेवाला नहीं मिलेगा तो भी पूर्ति हो जायगी! आपकी लगन नहीं होगी तो बढ़िया बात बतानेपर भी वह काम नहीं करेगी।

विषयभोग कितना ही बढ़िया हो, पर वह मिलता है और बिछुड़ जाता है। जो मिलता है और बिछुड़ जाता है, वह अपना नहीं होता—इस एक बातपर पक्के डटे रहो। इससे आपमें जरूर फर्क पड़ेगा।

आप रोजाना दिनमें आठ-दस बार, बीस-पचीस बार विचार करो कि विषयोंकी आसक्ति कैसे मिटे? यह आदत कैसे छूटे? मेरा विश्वास है कि इससे जरूर फर्क पड़ेगा। पहले-जैसी आसक्ति नहीं रहेगी। रुपये कैसे मिलें—यह इच्छा जोरदार होनेपर भी रुपये मिल जायँगे, यह नियम नहीं है। परन्तु मेरी वृत्तियाँ शुद्ध कैसे हों—यह इच्छा बार-बार होगी तो जरूर लाभ होगा। कारण कि रुपये मिलनेमें प्रारब्ध मुख्य है और पारमार्थिक साधनमें इच्छा मुख्य है। 'भोग मिलें, रुपये मिलें, आदर मिले, सत्कार मिले, लोग मेरेको अच्छा समझें आदि', और 'भोगोंमें आसक्ति मिट जाय, भगवान्‌में रुचि हो जाय, भगवान् मीठे लगें'—इन दोनोंमें आपकी ज्यादा लगन किसमें होती है? विचार करें।

*** *** ***

जीवमात्रका उद्धार करनेके लिये भगवान्‌ने कितना उद्योग किया है! कैसे-कैसे रूप (शंकर, गणेश, देवी आदि) धारण किये हैं! कैसी-कैसी विचित्र-विचित्र लीलाएँ की हैं! वे कैसे-कैसे रूपोंमें क्या-क्या लीला करते हैं कि मनुष्यकी बुद्धि चकरा जाती है! कैसा ही प्राणी हो, वह अपनेको परमात्माके समर्पित करके कितने आनन्दको प्राप्त हो सकता है! ऐसे दयालु परमात्माके रहते हुए मनुष्य दुःख पाये, यह कितनी दीनताकी बात है!

अपने देवताओंमें कितनी विलक्षणता, अलौकिकता है कि जैसा आप चाहें, वैसा देवता मिल जायगा, वैसी सब सामग्री तैयार मिल जायगी। भगवान्‌के एक-एक रूपमें कितनी विलक्षणता, अलौकिकता भरी हुई है!

आप जहाँ हो, वहाँ ही और जैसे हो, वैसे ही भगवान्‌को 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। भगवान् उद्धार करनेके लिये तैयार हैं! वे हरदम कृपा करनेके लिये तैयार रहते हैं। सूर्य बाहर प्रकाश करता है, भगवान्‌की कृपा भीतर प्रकाश करती है।

आजतक भगवान्‌के विषयमें जितना आपने जाना है, जितनी आपकी समझ है, उसी रूपको याद करो और 'हे नाथ! हे प्रभो!' पुकारो। इतना सरल कोई रास्ता है नहीं।

*** *** ***

एक मार्मिक बात है कि जैसे आप परमात्माके अंश हो, ऐसे ही आपके पास शरीर तथा रुपये आदि जो भी सामग्री है, वह केवल दूसरोंका हित करनेके लिये है, आपके भोगनेके लिये है ही नहीं। यह असली बात है। इस बातको मानोगे, तब ठीक साधन शुरू होगा। **जबतक मिली हुई वस्तुओंको अपनी और अपने लिये मानते रहोगे, तबतक भूल मिटेगी नहीं। कितना ही साधन करो, सिद्धि नहीं होगी।** हमारे पास जितनी सुखदायी चीजें हैं, वे सब केवल सेवा करनेके लिये हैं, अपने लिये नहीं हैं। अपने लिये केवल भगवान् हैं।

श्रोता—मनमें बहुत बुरे-बुरे विचार आते हैं, क्या करूँ?

स्वामीजी—वे आते नहीं हैं, जाते हैं। जैसे बन्द मकान खोलते ही भीतरका धुआँ बाहर निकलता है, ऐसे ही आप भजन-स्मरण, नामजप, कीर्तन, सत्संग आदि करते हैं तो बुरे विचार बाहर निकलते हैं, नष्ट होते हैं। दरवाजेपर जाता हुआ आदमी भी दीखता है और आता हुआ आदमी भी दीखता है। भजन-स्मरण करते समय जाते हुए पाप दीखते हैं, आते हुए नहीं। इसलिये उनको जाने दो और प्रसन्न हो जाओ कि पाप निकल रहे हैं, तो थोड़े दिनोंमें अन्त:करण शुद्ध, निर्मल हो जायगा। गन्दी नालीको साफ करते हैं तो दुर्गन्ध फैलती है, तो वह दुर्गन्ध नष्ट हो रही है। भगवान्‌का भजन करनेसे गन्दगी निकलती है। इसकी पहचान यह है कि पहलेकी अपेक्षा बुरे विचार कम होते चले जायँगे।

भगवान्‌को 'हे नाथ! हे नाथ!' पुकारो। उनकी कृपासे आपका पापोंसे पिण्ड छूट जायगा, आप शुद्ध हो जाओगे!

*** *** ***

मैं कहता हूँ, पर आप ध्यान नहीं देते। कृपानाथ! कृपा करके ध्यान दो। अभी मौका बहुत बढ़िया आया हुआ है! जब बढ़िया मौका मिला हुआ होता है, उस समय मनुष्य उसकी कीमत नहीं समझते। पर जब मौका निकल जाता है, तब कहते हैं कि समय बहुत अच्छा था, पर हमने लाभ नहीं उठाया! जब व्यापारका बढ़िया मौका निकल जाता है, तब सब रोते हैं। जिसने हजार रुपये कमाये, वह भी रोता है और जिसने लाख रुपये कमाये, वह भी रोता है! अरबपति भी रोता है कि अगर उस समय पता होता तो हम ऐसे मालामाल हो जाते। इसी तरह आपको पीछे रोना पड़ेगा कि वह समय बड़ा अच्छा था, हम मालामाल हो जाते! जो साधन करते हैं, वे भी रोयेंगे, फिर जो साधन नहीं करते, वे तो रोयेंगे ही कि साधन करनेका बड़ा सुन्दर मौका था, पर उस समय हमने चेत नहीं किया!

का बरषा सब कृषी सुखानें। समय चुकें पुनि का पछितानें॥

(मानस, बाल० २६१। २)

अभी जो लोग साधन कर रहे हैं, वे भी जैसा चेत होना चाहिये, वैसा नहीं कर रहे हैं! नहीं तो बहुत विशेष लाभ हो सकता है। **ऐसा मौका पहले मिला नहीं है, फिर मिलेगा नहीं!** इसलिये सच्चे हृदयसे चलते-फिरते, उठते-बैठते हरदम 'हे नाथ! हे मेरे नाथ!' पुकारो। हरदम 'हे नाथ! हे मेरे स्वामी! मैं आपको भूलूँ नहीं' कहते रहो। एक भगवान्‌को याद कर लो तो सब काम ठीक

हो जायगा। सब काम कर लिये, पर एक भगवान्‌का भजन नहीं किया तो सब निरर्थक हो जायगा, सब गुड़ गोबर हो जायगा!

*** *** ***

श्रोता—कर्मयोग और ज्ञानयोग तो लौकिक हैं, पर भक्ति अलौकिक है, यह बात पूरी समझमें नहीं आयी!

स्वामीजी—परमात्माकी दो प्रकृतियाँ हैं—अपरा (जड़) और परा (चेतन)। इनमें अपराको लेकर कर्मयोग और पराको लेकर ज्ञानयोग चलता है। परन्तु भक्तियोग दोनों प्रकृतियोंके मालिक (ईश्वर)-को लेकर चलता है। सम्पूर्ण लोकोंमें जितने भी प्राणी हैं, उनमें शरीर (जड़) और जीवात्मा (चेतन)—ये दोनों देखनेमें आते हैं; परन्तु ईश्वर देखनेमें अथवा जाननेमें नहीं आता। शास्त्रोंसे और सन्तोंसे सुनकर ईश्वरको मानते हैं। शास्त्रोंके सिवाय अपने पास ईश्वरके विषयमें कोई प्रमाण नहीं है।

वेदान्त-शास्त्रमें जगत्, जीव और ईश्वर—तीनोंको विचारका विषय बताया गया है—**'जगज्जीवपरात्मनाम्'**। परन्तु वास्तवमें ईश्वर विचारका विषय नहीं है। विचार वहीं किया जाता है, जहाँ बुद्धि काम करती है। बुद्धि वहींतक काम करेगी, जहाँतक उसका क्षेत्र है। बुद्धि जड़ और चेतनमें काम करती है। ईश्वरमें श्रद्धा, भक्ति, भाव काम करता है। इसलिये भक्तियोग अलौकिक है। परन्तु यह बात प्रसिद्ध नहीं है। मैंने संस्कृत और हिन्दीकी अनेक टीकाएँ देखी हैं, पर किसी टीकाकारने इसका (लौकिक-अलौकिकके भेदका) विवेचन किया हो, यह मेरे देखनेमें नहीं आया।

भगवान् परा और अपरा दोनों प्रकृतियोंके मालिक हैं। मालिकका विशेष वर्णन नहीं होता। मालिकको आप मानो, चाहे मत मानो, आपकी स्वतन्त्रता है। भगवान्‌को माने बिना भी आप संसारकी आसक्ति छोड़कर मुक्त हो सकते हो। परन्तु भगवान्‌का जो अलौकिक प्रेम है, वह भगवान्‌को माने बिना नहीं हो सकता। वह प्रेम भगवान्‌से ही होता है। जो जीवन्मुक्तिमें भी सन्तोष नहीं करता, उसको प्रेमकी प्राप्ति होती है। परन्तु जो मुक्तिमें सन्तोष कर लेता है, उसका जन्म-मरण तो मिट जाता है, पर प्रेमकी प्राप्ति नहीं होती। दास्य, सख्य, वात्सल्य और माधुर्य—ये चारों रस भी वास्तवमें अलौकिक (मुक्तिके बाद) होते हैं। उससे पहले (लोकमें) ये नकली होते हैं।

ज्ञानका रस (आनन्द) तो अखण्ड, सम, शान्त है, पर प्रेमका रस प्रतिक्षण वर्धमान है। चन्द्रमा बढ़ता है तो अन्तमें पूर्णिमा आ जाती है, पर भगवान्‌के प्रेममें पूर्णिमा नहीं आती। वह बढ़ता ही रहता है। लोगोंमें यह धारणा है कि भक्तिमें द्वैत है, पर वास्तवमें भक्तिमें असली अद्वैत होता है। जबतक दो चीजें हैं, तबतक असली प्रेम नहीं होता।

भक्ति अलौकिक और सर्वश्रेष्ठ है। यह बात गीताकी 'साधक-संजीवनी' टीका लिखनेके बाद मेरेको मथानिया-सत्संगमें मालूम हुई। गीताका मूल पाठ करते-करते भीतरसे यह बात पैदा हुई। मेरी इच्छा भी नहीं थी। अपने-आप ही भक्तिकी अलौकिकता मालूम हुई!

*** *** ***

श्रोता—ज्ञानशून्य प्रेमाभक्ति कैसी होती है?

स्वामीजी—प्रेमाभक्ति ज्ञानशून्य नहीं होती, प्रत्युत उसमें ज्ञानका आदर नहीं होता। उसमें ज्ञानकी तरफ ध्यान नहीं होता कि ज्ञान है या नहीं है, ज्ञान कैसा है, कैसा नहीं है, आदि। प्रेमाभक्तिमें बिना इच्छाके, जबर्दस्ती ज्ञान आता है—***'अनइच्छित आवइ बरिआईं'*** (मानस, उत्तर० ११९। २)! परन्तु भक्त उसकी परवाह नहीं करता। उसमें स्वत:-स्वाभाविक अखण्ड ज्ञान रहता है। **अगर वह**

ज्ञानका विशेष आदर करेगा तो ज्ञान रहेगा, प्रेम नहीं बढ़ेगा। जब भक्त ज्ञानकी, मुक्तिकी परवाह नहीं करता, इनको ठुकरा देता है, तब प्रेम प्राप्त होता है।

परमात्माका बोध और प्रेम सबके लिये खुले हैं। परन्तु भोग और संग्रहकी इच्छा रहनेके कारण इनकी प्राप्ति नहीं होती।

प्रेम प्रतिक्षण बढ़नेवाला होता है। उसमें एक मस्ती रहती है। भगवान्‌को भक्तकी तरफ देखनेसे आनन्द आता है और भक्तको भगवान्‌की तरफ देखनेसे आनन्द आता है। यह आनन्द बढ़ता ही रहता है। भगवान्‌के प्रेममें मतवाले भक्तोंकी दृष्टिमें संसार नहीं रहता। परन्तु सांसारिक लोगोंकी दृष्टिमें संसार रहता है, भगवान् नहीं रहते। वे भगवान्‌की तरफ ख्याल ही नहीं करते, प्रत्युत सुख-दु:ख भोगते रहते हैं, रोते-चिल्लाते रहते हैं। संसारमें सुख तो थोड़ा होता है, पर दु:ख ज्यादा होता है; क्योंकि संसार दु:खालय है। परन्तु भगवान्‌के भक्त हरदम मस्त रहते हैं, मौजमें रहते हैं। उनको सुखमें भी आनन्द होता है, दु:खमें भी आनन्द होता है। कितना ही बड़ा दु:ख आनेपर भी उनमें आनन्द ही रहता है। कारण कि वे भगवान्‌की मरजीमें अपनी मरजी मिला देते हैं। उनकी दृष्टिमें जो होता है, भगवान्‌की मरजीसे ही होता है—

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई॥

(मानस, बाल० १२८। १)

इसलिये उनकी दृष्टिमें सब ठीक-ही-ठीक होता है, बेठीक होता ही नहीं।

*** *** ***

श्रोता—भगवान्‌की कृपासे हमारा निश्चित कल्याण होगा—ऐसा विश्वास करके अगर हम नाम-जप, कीर्तन आदि करें तो हमारी दुर्गति तो नहीं होगी?

स्वामीजी—नहीं होगी, प्रत्युत ऐसा करनेसे जरूर कल्याण होगा। इसके सिवाय और मनुष्य क्या करे? केवल भगवान्‌पर विश्वासमात्रसे कल्याण होता है। कारण कि भगवान्‌पर विश्वास करनेवाला भगवान्‌का भजन ही करेगा, दुर्गुण-दुराचार करेगा नहीं, पाप करेगा नहीं, अन्याय करेगा नहीं, तो कल्याण नहीं होगा तो क्या होगा? जरूर कल्याण होगा, इसमें सन्देह नहीं। कल्याण तो खास हमारी चीज है। उसपर हमारा पूरा हक है। **भगवान्‌पर पूरा विश्वास होगा तो भजन-ध्यान अपने-आप होगा। उससे शास्त्र-निषिद्ध काम, पाप, अन्याय होगा ही नहीं।**

भगवान्‌पर विश्वास करनेवालेके द्वारा कई आदमियोंका कल्याण होता है। कोई भी काम करनेवाला अकेला नहीं रहता। चोर कइयोंको चोर बना देता है। साधु कइयोंको साधु बना देता है। यह बिना परिश्रम किये, स्वत:-स्वाभाविक होता है।

यह बात मैंने कई बार कही है कि **संसारमें तो नफा और नुकसान दोनों होते हैं, पर परमात्मप्राप्तिके मार्गमें नफा-ही-नफा है, कल्याण-ही-कल्याण है, उद्धार-ही-उद्धार है, सुधार-ही-सुधार है, नुकसान है ही नहीं!** कारण कि संसारके पदार्थ आपको नहीं चाहते, पर भगवान् आपको चाहते हैं। आप जैसे भगवान्‌को भजते हैं, भगवान् भी आपको वैसे ही भजते हैं—**'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** (गीता ४। ११)। इस प्रकार दोनों ही भजन करते हैं। भगवान् जिसका भजन करें, उसके कल्याणमें क्या सन्देह है!

पारमार्थिक मार्ग सबके लिये खुला है। पारमार्थिक बातें जाननेवाले श्रोताओंसे कोई फीस लेते ही नहीं। सत्संग मुफ्तमें मिलता है। कोई फीस नहीं, कोई टैक्स नहीं। पारमार्थिक पुस्तकें भी सस्ती

मिलती हैं। कोई बाधा लगानेवाला है ही नहीं। **जो सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लग जाता है, उसकी भगवान् सेवा करते हैं, दुनिया सेवा करती है! पशु-पक्षी भी उसकी सेवा करते हैं! उसपर भूत, भविष्य तथा वर्तमानमें होनेवाले सब-के-सब सन्त कृपा रखते हैं! काल उसके अनुकूल हो जाता है, समय अनुकूल हो जाता है, जनता अनुकूल हो जाती है। जड़-चेतन, स्थावर-जंगम सब उसके अनुकूल हो जाते हैं! पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश—ये पाँचों तत्त्व उसके अनुकूल हो जाते हैं!** मीराबाईको सिंह भी मार नहीं सका। प्रह्लादजीको आग भी जला नहीं सकी। क्रूर राक्षस भी उनको मार नहीं सके।

जो सन्त जंगलमें रहते हैं, उनकी चोर-डाकू भी सेवा करते हैं! सच्चे हृदयसे भगवान्‌में लगे हुएको अन्न-जल-वस्त्र आदिकी कमी नहीं रहती। **उसको दूसरोंसे माँगना नहीं पड़ता।** उसके लिये सब चीजें खुली हो जाती हैं, जबकि वह अपने पास रखता नहीं। दूसरोंके हृदयमें स्वतः-स्वाभाविक उसके प्रति उदारता पैदा होती है। सब हृदयसे उसकी सेवा करना चाहते हैं। दुनियामात्रकी उसके प्रति सद्भावना होती है। उसके कारण वायुमण्डल शुद्ध हो जाता है! वृक्षोंमें फल ज्यादा लगने लग जाते हैं! पृथ्वी हरी हो जाती है! दुनियामात्रके जीव प्रसन्न हो जाते हैं! कारण कि परमात्माकी तरफ चलनेवाला किसीका भी कभी अहित नहीं चाहता। उसके द्वारा कभी किसीका नुकसान नहीं होता। शास्त्रमें आया है—

गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः।
अलुब्धैर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही॥

(स्कन्दपुराण, माहे० कुमार० २। ७१)

'गायें, ब्राह्मण, वेद, सती स्त्री, सत्यवादी, लोभरहित और दानशील सन्त-महापुरुष—इन सातोंके द्वारा यह पृथ्वी धारण की जाती है अर्थात् इनपर पृथ्वी टिकी हुई है।'

सन्तोंके संगसे, दर्शनसे, स्पर्शसे, भाषणसे, दृष्टिसे, वायुसे सब जगह पवित्रता-ही-पवित्रता हो जाती है। उनसे पवित्रताका एक विलक्षण प्रवाह चलता है!

सत्संगकी बातें बहुत विशेष असर करती हैं। सत्संगकी बातोंका अभाव कभी होता ही नहीं। क्रूर-से-क्रूर आदमीके साथ भी सत्संगकी बात रहेगी। **अपने लोगोंमें जो सत्संगके संस्कार पड़े हैं, वे जायँगे नहीं। सत्संग सुननेवाले भाई-बहनोंका कल्याण होगा ही! इसमें किंचिन्मात्र भी सन्देहकी बात नहीं है!**

*** *** ***

शास्त्रोंमें अपने मन-बुद्धिको भगवान्‌में लगानेकी बात आती है, पर बढ़िया बात है—अपने-आपको भगवान्‌में लगा देना कि 'मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे हैं'। मन-बुद्धिको भगवान्‌में लगाना करणसापेक्ष है, पर अपना सम्बन्ध भगवान्‌के साथ जोड़ना करणसापेक्ष नहीं है। इसलिये आप स्वयं भगवान्‌को अपना मानो, मन-बुद्धिके द्वारा नहीं। जो मनको भगवान्‌में लगाता है, वही योगभ्रष्ट होता है—**'योगाच्चलितमानसः'** (गीता ६। ३७)।

भगवान्‌के साथ हमारा सम्बन्ध अटूट, अखण्ड और स्वतःसिद्ध है। जैसे लड़का माँ-बापका होता है, ऐसे हम भगवान्‌के हैं। माँ-बापको हम मानते हैं, जानते नहीं हैं। जैसे जाननेकी बात पक्की होती है, वैसे माननेकी बात कम पक्की नहीं है। हम पूरे-के-पूरे भगवान्‌के हैं और भगवान् पूरे-के-पूरे हमारे हैं। परन्तु संसारकी तिल-जितनी चीज भी हमारी नहीं है।

मैं भगवान्‌का हूँ—यह सब बातोंकी सार बात है। भगवान् तथा उनके प्रेमकी प्राप्तिमें मेरापन

ही खास चीज है, तप, दान, तीर्थ, व्रत आदि नहीं। सैकड़ों तप, व्रत, तीर्थ, उपवास आदि कर लो तो भी भगवान्‌में अपनेपनके समान कुछ नहीं है। **भगवान्‌में अपनापन भजन-ध्यानसे भी श्रेष्ठ है! भगवान्‌के नामका जप, भगवान्‌का चिन्तन, भगवान्‌का ध्यान, भगवान्‌में समाधि—इन सबसे श्रेष्ठ बात है कि 'मैं भगवान्‌का हूँ, भगवान् मेरे हैं'! इसमें आपका विश्वास जितना दृढ़ होगा, उतना आपका काम ठीक हो जायगा।**

भगवान् सर्वसमर्थ हैं, वे सब कुछ दे सकते हैं, सब कुछ कर सकते हैं, इसलिये मेरे हैं, मेरी सहायता करेंगे, मेरी रक्षा करेंगे—यह सकामभाव नहीं रहना चाहिये। भगवान् मेरे हैं, बस, उनसे कुछ लेना नहीं है। दर्शन भी दें या न दें, उनकी मरजी। भगवान् कहाँ हैं, कैसे हैं, क्या करते हैं, क्या नहीं करते हैं—इन बातोंकी इतनी जरूरत नहीं है, जितनी जरूरत मेरापनकी है। वे दर्शन दें तो मेरे हैं, दर्शन न दें तो मेरे हैं। वे सुख दें तो मेरे हैं, दुःख दें तो मेरे हैं। वे किसी भी परिस्थितिमें रखें तो भगवान् मेरे हैं, परिस्थिति मेरी नहीं है।

भगवान् मेरे हैं—यह एक बात याद कर लो, मनमें जमा लो। हरदम भगवान्‌का होकर रहो। **भजन-ध्यानमें तो विघ्न पड़ता है, पर अपनेपनमें विघ्न नहीं पड़ता।** जैसे सूर्यका उदय होनेपर सूर्यको प्रकाश करना नहीं पड़ता, अपने-आप प्रकाश होता है, ऐसे ही भगवान्‌का होनेपर सुधार करना नहीं पड़ता, भगवान्‌की कृपासे अपने-आप सुधार होता है। 'मैं भगवान्‌का हूँ'—यह भाव ज्यों-ज्यों दृढ़ होगा, त्यों-त्यों आपमें विलक्षणता आयेगी, एक विशेष आनन्द होगा। भगवान्‌से दूरी, भगवान्‌से भेद और भगवान्‌से भिन्नता नहीं रहेगी। **भगवान्‌को अपना न माननेसे तरह-तरहकी, नयी-नयी आफत आयेगी, और भगवान्‌को अपना मान लेनेसे सब आफत मिट जायगी।**

*** *** ***

स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीर तथा इनसे होनेवाली क्रिया, चिन्तन और स्थिरता (समाधि)—ये सब परमात्मप्राप्तिमें कारण नहीं हैं। परमात्मप्राप्ति स्वयंसे होती है, जो परमात्माका अंश है। वह स्वयं परमात्माके शरण हो जाय, पर साथमें मन-बुद्धि नहीं रहें। **मन-बुद्धि साथमें रहेंगे तो परमात्मा दूर दीखेंगे; क्योंकि मन-बुद्धि प्रकृतिके कार्य हैं।** अनन्त ब्रह्माण्डोंमें कुछ भी अपना नहीं है, पर परमात्मा पूरे-के-पूरे अपने हैं। जहाँ आप हैं, वहीं परमात्मा हैं। इसलिये आप वहीं परमात्माके शरण हो जायँ।

एक परमात्माके चरणोंका 'आश्रय' (शरणागति) हो और एक 'विश्राम' (कुछ न करना) हो। आश्रय और विश्राम—दोनोंसे परमात्माकी प्राप्ति होती है। जो परमात्मा सब जगह परिपूर्ण हैं, उनकी प्राप्ति करनेके लिये क्रिया हेतु नहीं बनती। **आप परमात्माको दूर मानते हैं, इसलिये आपको क्रिया करनी पड़ती है। आप जहाँ हैं, वहाँ परमात्मा पूरे-के-पूरे हैं।** इसलिये विश्राम होते ही परमात्मामें स्वतः-स्वाभाविक स्थिति है।

*** *** ***

श्रोता—आपके 'साधक-संजीवनी' और 'साधन-सुधा-सिन्धु' ग्रन्थ मैंने पढ़े हैं। आपने गुरु बनानेकी बात कहीं नहीं लिखी है। इसका वास्तविक रहस्य क्या है?

स्वामीजी—आजकल गुरु बनना एक पेशा हो गया है। गुरु वास्तवमें वह होता है, जो हमारे हृदयके अंधकारको मिटाकर ज्ञानका प्रकाश कर दे। ऐसा गुरु मिलना आजकल असम्भव-जैसा हो गया है! इसलिये मैंने गुरु बनानेकी बात नहीं कही। इसका मतलब यह नहीं है कि गुरु बनाना नहीं चाहिये। वास्तवमें गुरु कल्याणके लिये बनाया जाता है। परन्तु गुरु शिष्य बनाकर और शिष्य

गुरु बनाकर राजी हो जाय तो इससे कुछ फायदा नहीं है। जीवनमें परिवर्तन होना चाहिये। जिन्होंने गुरु बनाया है, उनको देखो कि उनके जीवनमें परिवर्तन हुआ है क्या? उनमें कोई पारमार्थिक विलक्षणता आयी है क्या? गुरु बनाना मामूली चीज नहीं है। मनुष्यशरीर परमात्माकी प्राप्तिके लिये मिला है, पर गुरु बनाकर सन्तोष कर लिया और दूसरी जगह जाना बन्द कर दिया तो उससे क्या फायदा हुआ? मैं यह कहता हूँ कि आप सब जगह सुनो और जिन बातोंसे अपना कल्याण हो, उनको धारण करो।

जैसे वृक्षपर फल पकता है तो तोता अपने-आप आता है, बुलाना नहीं पड़ता, ऐसे ही जिसके भीतर जिज्ञासा जाग्रत् होती है, उसके पास गुरु अपने-आप आता है। बालकके लिये माँकी जरूरत ज्यादा होती है, पर माँके भीतर जितना स्नेह होता है, उतना बालकमें नहीं होता। माँको बालककी जितनी चिन्ता होती है, उतनी बालकको नहीं होती। सरदी आनेसे पहले ही माँ बालकके लिये गरम कपड़े बनाना शुरू कर देती है! माँकी जैसी दृष्टि होती है, उससे गुरुकी कम दृष्टि नहीं होती। जो असली सन्त हैं, उनके हृदयमें आपका कल्याण करनेकी जितनी चिन्ता है, अपने कल्याणकी उतनी चिन्ता क्या आपके हृदयमें है? परन्तु आजकल जो गुरु बनते हैं, उनके हृदयमें कल्याणकी चिन्ता है ही नहीं! वे खुद तो कल्याण कर सकते नहीं और दूसरी जगह जाने देते नहीं, तो लाभ हुआ या नुकसान?

आपने 'साधक-संजीवनी' और 'साधन-सुधा-सिन्धु'—दोनों ग्रन्थ देखे हैं। उनमें जीवके कल्याणकी बातमें क्या कमी है? **'साधक-संजीवनी' को देखकर सन्तोंने मेरेसे कहा है कि जो कल्याण चाहता हो, उसके लिये यह एक पुस्तक काफी है। इस एक पुस्तकमें कल्याणकी सब बातें भरी हुई हैं।** वह गुरु नहीं तो और क्या है! ऐसी कौन-सी बात गीतामें अथवा 'साधक-संजीवनी' और 'साधन-सुधा-सिन्धु' में नहीं आयी है, जो गुरु बतायेगा? जीवके कल्याणकी कौन-सी बात कम आयी है? परमात्मप्राप्तिके मार्गकी कौन-सी ऐसी बाधा है, जिसका समाधान गीतामें नहीं हुआ? कल्याणकी ऐसी कौन-सी बात है, जो गुरुसे मिलती है, गीतासे नहीं मिलती? गीता एक अलौकिक ग्रन्थ है। गीता-जैसा ग्रन्थ मैंने देखा नहीं है। मैंने गीताको ही गुरु बनाया है! आप बतायें, ऐसी कौन-सी बात है, जो गीतामें नहीं है?

श्रोता—गीतामें पेट भरनेकी बात नहीं आयी है!

स्वामीजी—आपने गीता पढ़ी होती तो ऐसी बात नहीं कहते। गीतामें पेट भरनेकी बहुत बातें बतायी हैं; जैसे—'**कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यम्**' 'खेती करना, गायोंकी रक्षा करना और व्यापार करना' (गीता १८। ४४) आदि। इतना ही नहीं, पेट भरते हुए कल्याण हो जाय, यह भी गीता बताती है—'**स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः**' (गीता १८। ४५) आदि! गीता व्यवहारमें परमार्थकी कला बताती है।

ऐसी कोई बात नहीं है, जो गीतामें न बतायी हो। इतना ही नहीं, जो बात गीताने नहीं बतायी, वह बात भी गीता पढ़ा हुआ व्यक्ति अच्छी तरह कर लेगा। जैसे, विवाह कैसे करना चाहिये—यह बात गीतामें नहीं आयी है; परन्तु गीता पढ़ा हुआ व्यक्ति जैसा विवाह करेगा, उसके समान दूसरा कर ही नहीं सकता! स्वार्थका त्याग करके दूसरेका हित करना—यह युक्ति गीतामें जगह-जगह बतायी है। **मेरी ऐसी धारणा है कि किसी भी विषयमें शंका हो, गीताको जाननेवाला उसका अच्छी तरहसे समाधान कर देगा।**

*** *** ***

श्रोता—अपनी सत्ताको सर्वव्यापी बताया गया है; परन्तु अपनी सर्वव्यापक सत्ताका अनुभव न होकर एकदेशीयपना दीखता है। यह एकदेशीयपना कैसे मिटे?

स्वामीजी—अहंकारको अपना स्वरूप माननेसे अर्थात् अपनेको **'मैं हूँ'** माननेसे एकदेशीयता दीखती है। अहंकार अपरा प्रकृति है—

भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहङ्कार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा॥
(गीता ७। ४)

'पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश और मन, बुद्धि तथा अहंकार—यह आठ प्रकारके भेदोंवाली मेरी अपरा प्रकृति है।'

परन्तु हम परमात्माकी परा प्रकृति हैं, परमात्माके साक्षात् अंश हैं—***'ईस्वर अंस जीव अबिनासी'*** (मानस, उत्तर० ११७। १)। अतः हमारी एकता परमात्माके साथ है, जबकि अहंकारकी एकता जड़ प्रकृतिके साथ है। हम चेतन-विभागमें हैं और अहंकार जड़-विभागमें है। हम अहंकारसे रहित हैं।

श्रोता—मेरी परमात्माके साथ एकता है, मन-बुद्धि-अहंकारके साथ एकता नहीं है—ऐसा मान लेनेसे क्या सर्वव्यापकताका अनुभव हो जायगा?

स्वामीजी—इसका ठीक तरहसे अनुभव होना चाहिये, केवल याद करना नहीं। जाननेकी शक्ति व्यापक है। **जो सबको जाननेवाला, सबका आश्रय, सबका आधार, सबका अधिष्ठान, सबका साक्षी, सबका प्रकाशक है, वह हमारा स्वरूप है।** अहम् हमारा स्वरूप नहीं है। हम अहंकारको प्रकाशित करनेवाले हैं। सुषुप्ति (गाढ़ नींद)-में 'मैं हूँ'—यह अहंकार नहीं रहता, फिर भी हमारी सत्ता रहती है। अहंकारके अभावका तो अनुभव होता है, पर अपने अभावका अनुभव किसीको नहीं होता।

हम परमात्माके हैं—यह बात सबके कामकी है। हरेक भाई-बहन मान ले कि हम भगवान्‌के हैं। भगवान्‌की बातको पहले मानना पड़ता है। जानना वहाँ होता है, जहाँ हमारी बुद्धि पहुँचती है। जो चीज हमारी बुद्धिके अन्तर्गत आती है, उसको हम जानते हैं। जैसे, हम हाथसे दीवारको नहीं पकड़ सकते; क्योंकि वह हमारे हाथके अन्तर्गत नहीं आती, ऐसे ही हम परमात्माको बुद्धिसे नहीं पकड़ सकते। बुद्धि संसारमें काम करती है, परमात्मामें नहीं। इसलिये आप अभीसे ऐसा मान लो कि 'हम भगवान्‌के हैं, भगवान् हमारे हैं', फिर वह माना हुआ नहीं रहेगा, जाना हुआ हो जायगा। **माँ-बापको हम मान ही सकते हैं, जान नहीं सकते। परमात्मा माननेमें आते हैं, संसार जाननेमें आता है। जो माननेमें आता है, वह हमारा है। जो जाननेमें आता है, वह हमारा नहीं है।**

*** *** ***

श्रोता—भगवत्प्राप्तिमें नामकी संख्याकी महत्ता है या नामजपकी महत्ता है?

स्वामीजी—संख्याकी महत्ता नहीं है, मन लगानेकी महत्ता है। भगवान्‌में प्रेम, मेरापन होना चाहिये। बालक माँ-माँ करता है तो क्या उसकी गिनती करता है? जैसे बालकको माँ मीठी लगती है, ऐसे ही भगवान् मीठे लगने चाहियें। संख्या इसलिये कही जाती है कि नामजप कम न हो जाय।

श्रोता—हमारा दुर्गाका इष्ट है तो क्या राम या कृष्ण नामका कीर्तन कर सकते हैं?

स्वामीजी—ये भी माँके ही नाम हैं—ऐसा समझकर कीर्तन कर सकते हैं। राम, कृष्ण आदिसे माँ दूसरी नहीं है। राम, कृष्ण, दुर्गा आदि सब एक ही हैं। एक ही परमात्माके पाँच रूप हैं—

शक्ति, शिव, गणेश, सूर्य और विष्णु। भगवान् कहते हैं—

सौराश्च शैवा गाणेशा वैष्णवाः शक्तिपूजकाः।
मामेव प्राप्नुवन्तीह वर्षापः सागरं यथा॥
एकोऽहं पञ्चधा जातः क्रीडया नामभिः किल।
देवदत्तो यथा कश्चित् पुत्राद्याह्वाननामभिः॥

(पद्मपुराण, उत्तर० ९०। ६३-६४)

'जैसे वर्षाका जल सब ओरसे समुद्रमें ही जाता है, वैसे ही विष्णु, सूर्य, शिव, गणेश और शक्तिके उपासक मुझे ही प्राप्त होते हैं। जैसे एक ही देवदत्त नामक व्यक्ति पुत्र, पिता आदि अनेक नामोंसे पुकारा जाता है, वैसे ही लीलाके लिये मैं एक ही पाँच रूपोंमें प्रकट होकर अनेक नामोंसे पुकारा जाता हूँ।'

श्रोता—मैं राजकीय चिकित्सा-विभागमें काम करता हूँ। सरकार कहती है कि आपको इतने नसबन्दी-ऑपरेशन करवाने ही पड़ेंगे। हम ऐसा नहीं करेंगे तो सरकार नौकरीसे हटा देगी। क्या करें?

स्वामीजी—यह अन्याय है। आप निश्चय कर लो कि हम पाप नहीं करेंगे.....नहीं करेंगे.....नहीं करेंगे। नौकरीसे हटा दे तो बहुत अच्छी बात है। क्या सब नौकरी करते हैं? क्या नौकरी करनेसे ही रोटी मिलती है? हम नौकरी नहीं करते, फिर भी रोटी मिल रही है। आप निधड़क रहो। भगवान् जरूर पालन करेंगे।

***   ***   ***

श्रोता—अन्तसमयमें भगवान्‌का नाम लेनेसे मुक्ति हो जाती है, तो फिर उसके पापोंका क्या होगा?

स्वामीजी—भगवान्‌का नाम लेते ही उसके पाप भस्म हो जायँगे। नामकी महिमा सब कालमें है, पर अन्तकालमें विशेष छूट है।

श्रोता—यह जो विदेशी गाय है, वह गायकी श्रेणीमें आती है या नहीं आती?

स्वामीजी—नहीं आती। देसी गायमें जो विशेषता मिलती है, वह विदेशी गायमें नहीं मिलती। यह गाय न होकर भैंसकी तरह ही है।

***   ***   ***

सब-के-सब सुखी हो जायँ, कोई भी दुःखी न रहे—ऐसा अपना शुद्ध भाव रखें। अपना भाव शुद्ध होगा तो सर्वथा हमारी उन्नति होगी, इसमें सन्देह नहीं है। मनुष्यको उल्टी बुद्धिके कारण अपना स्वार्थ, अपना मतलब सिद्ध करना अच्छा दीखता है। पशु भी अपना मतलब सिद्ध करना चाहते हैं, अपना सुख चाहते हैं। फिर उनमें और मनुष्यमें क्या भेद रहा? **आप अपना स्वार्थ और अभिमान छोड़कर दूसरेके हितका भाव रखेंगे तो आपके चित्तमें अपने-आप शान्ति, निर्मलता आयेगी और परमात्माकी प्राप्ति हो जायगी—'ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतहिते रताः'** (गीता १२। ४)। इसलिये जितने अच्छे भक्त, सन्त-महात्मा हुए हैं, सबने सम्पूर्ण प्राणियोंके हितकी बात सोची है।

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

(मानस, उत्तर० ४१। १)

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

(मानस, अरण्य० ३१। ५)

एक दामोदर नामके ब्राह्मण थे। उनका विवाह हुआ तो उन्होंने अपनी स्त्रीसे कहा कि गृहस्थका

धर्म सबका पालन, सबकी सेवा करना है। अत: कोई भी घरमें आये तो उसका सत्कार करना। अतिथि-सत्कार करना गृहस्थका मुख्य धर्म है—इस बातका विशेष ध्यान रखना। स्त्रीने इस बातका पूरा पालन करनेका वचन दिया। दामोदर रोज भिक्षाके लिये जाता और जो मिल जाता, स्त्रीको लाकर दे देता। वह रोटी बनाकर खिला देती। इस तरह उनका जीवन-निर्वाह हो रहा था।

एक दिन दामोदर भिक्षाको गया तो कुछ मिला नहीं। घरमें कुछ था नहीं। उसको बड़ा दु:ख हुआ कि हम तो भूखे रह जायँगे, पर अचानक कोई अतिथि आ गया तो उसका सत्कार कैसे करेंगे? भोजन कैसे करायेंगे? इतनेमें बाहरसे आवाज आ गयी कि दामोदर घरमें है! दामोदरने बाहर जाकर देखा तो एक बूढ़े सन्त खड़े थे। सन्त बोले कि देखो भाई, हमने कई दिनोंसे तुम्हारी प्रशंसा सुनी है कि तुम बहुत अतिथि-सत्कार करते हो। इसलिये हमने विचार किया कि आज दामोदरके यहाँ भिक्षा करेंगे। दामोदर उनको आदरपूर्वक भीतर ले गया और चारपाईपर बैठा दिया।

दामोदर एकान्तमें अपनी स्त्रीके पास गया और बोला कि अब क्या करें? घरमें आटा ही नहीं है! साधु भूखा रह जायगा! बेचनेके लिये घरमें कोई सामान भी नहीं है। स्त्रीने कहा कि आप घबराओ मत, एक काम करो। नाईके यहाँसे एक कैंची ले आओ। दामोदर कैंची ले आया। स्त्रीने कहा कि मेरे सिरके बीच-बीचके केश काट दो और उसकी रस्सी बनाकर बेच दो। ब्राह्मण देवता बड़े खुश हुए कि तुम्हारी बुद्धि बड़ी तेज है! दामोदरने वैसा ही किया और बाजार जाकर उसे बेचकर दाल-चावल ले आया। भोजन बनाकर सन्तको परोस दिया। जितना भोजन बना था, सन्त सब-का-सब पा गये और बोले कि अब हमें तृप्ति हो गयी, अब और कुछ नहीं लाना। फिर वे बोले कि देखो भाई, वृद्ध शरीर है, कहाँ जायँगे! दिनभर यहीं रहेंगे। शामको थोड़ा-सा दाल-भात बना देना, ज्यादा कुछ बनानेकी जरूरत नहीं। दामोदरने स्त्रीसे पूछा कि अब क्या करें? स्त्रीने कहा कि चिन्ता मत करें। उसने बाकीके केश भी काटकर दे दिये। ब्राह्मण उसे बेचकर थोड़े-से दाल-चावल ले आया। रात्रिमें साधुको भोजन करा दिया। उस समय भी जितना बना था, वे सब-का-सब पा गये! सन्त बोले कि बूढ़ा शरीर है, रातको कहाँ जाऊँ! अत: रातको यहीं विश्राम करेंगे, सुबह चले जायँगे। दामोदरने चटाई बिछा दी। बाबाजी सो गये। दिनभरके भूखे दामोदर और उसकी स्त्री भूखे पेट ही बाबाजीके चरणोंकी तरफ लेट गये।

सेठजी (श्रीजयदयालजी गोयन्दका)-ने कहा था कि एकादशीका व्रत करनेसे दिनभर भूखा रहना पड़ता है। अगर दूसरेको भोजन करानेमें अपनेको एक समय भूखा रहना पड़े तो प्रसन्न रहे और शामको भोजन कर ले, तो बारह महीने एकादशीव्रत करनेका पुण्य होगा! दामोदर और उनकी स्त्री को जब नींद आयी, तब सन्तकी नींद खुल गयी! उन्होंने संकल्प किया कि दामोदरका मकान बहुत बढ़िया बन जाय, स्त्रीके सिरपर पुन: घने केश आ जायँ, दोनोंके शरीर ठीक हो जायँ, दोनोंके खूब कपड़े और गहने हो जायँ। वे जैसा-जैसा कहते गये, वैसा-वैसा होता गया। सन्त अन्तर्धान हो गये। सुबह दोनों जल्दी उठ गये तो सब देखकर आश्चर्यचकित हो गये! सन्तको नहीं देखा तो बाहर भागे। सन्त कहीं दीखे ही नहीं। वे समझ गये कि ये कोई साधारण बाबाजी नहीं थे, प्रत्युत स्वयं भगवान् ही थे। उन्हें बड़ा पश्चात्ताप हुआ और वे रोने लगे कि हे प्रभो! हमें माफ कर देना, हम आपको पहचान नहीं सके! वे आर्तभावसे प्रार्थना करने लगे। तब भगवान्ने प्रकट होकर वरदान दिया कि जबतक संसारमें रहो, खूब अतिथि-सत्कार करो। तुम्हें कोई कमी नहीं रहेगी। फिर मेरे धाममें आ जाओगे।

नीयत शुद्ध हो तो कोई कमी नहीं रहती। नीयत खराब होनेसे ही घाटा लगता है, आफत आती

है। खेती करनेवाले जमीनमें बढ़िया बीज डालते हैं तो खेती भी बढ़िया होती है। इसलिये दान-पुण्यमें बढ़िया चीज दो तो उसका फल भी बढ़िया होगा।

***　　　***　　　***

हरेक भाई-बहनको विचार करना चाहिये कि अभी हमारी जैसी चाल है, ऐसी चालसे हमारा काम पूरा हो जायगा क्या? इतने वर्ष हो गये, इन वर्षोंमें हमने कितना लाभ उठाया है? इस हिसाबसे कब हमारा काम पूरा होगा?

एक विलक्षण बात है कि हम तेजीसे साधन करेंगे तो भगवान् भी तेजीसे हमारी तरफ आयेंगे! भगवान्‌ने गीतामें कहा है—**'ये यथा मां प्रपद्यन्ते तांस्तथैव भजाम्यहम्'** (गीता ४। ११) अर्थात् जो जैसे मेरी भक्ति करते हैं, मैं भी वैसे ही उनकी भक्ति करता हूँ। **अगर अपनी लगन तेज हो तो हजारों वर्षोंमें होनेवाला काम घण्टोंमें हो सकता है!**

***　　　***　　　***

मनुष्यसे यह बहुत बड़ी भूल होती है कि वह दूसरोंका कर्तव्य देखता है, अपने कर्तव्यकी तरफ ध्यान नहीं देता। यह यह नहीं सोचता कि मेरा कर्तव्य क्या है? भगवान्‌ने कृपा नहीं की, महात्माओंने कृपा नहीं की, गुरुने कृपा नहीं की तो यह उनका कर्तव्य है, अपना कर्तव्य नहीं है। अपना कर्तव्य है—आस्तिक बनना, श्रद्धालु बनना, हमने कितना कर्तव्यका पालन किया है, उस तरफ ख्याल करना। दूसरोंका कर्तव्य हमारे अधीन नहीं है। हमें अपनेको अच्छा बनाना चाहिये, जो कि हमारे हाथकी बात है। अपनेको अच्छा या बुरा बनाना हमारे अधीन है। **मनुष्य यह विचार कर ले कि मुझे अच्छा बनना है तो उसे मना करनेवाला, रोकनेवाला कोई नहीं है।** अगर हम बुरा नहीं बनना चाहें तो दूसरा हमें बुरा कैसे बना लेगा? आजसे हम बुराई नहीं करेंगे—इस बातपर पक्के रहें तो आप भले हो जायँगे। भले होनेमें देरी नहीं लगती। हमारा विचार पक्का नहीं होता, तब गड़बड़ी होती है। दूसरा ऐसा करे, ऐसा न करे—यह हमारे अधीन नहीं है। वे करें या न करें, दर्शन दें या न दें, सद्‌बुद्धि दें या न दें, कृपा करें या न करें, यह उनके अधीन है। हमें तो अपनेको अच्छा बनाना चाहिये, जो हम कर सकते हैं।

भगवान्‌ने अपना उद्धार करनेके लिये ही आपको मनुष्यजन्म दिया है। अतः आप अपना उद्धार करना चाहें तो मना करनेवाला कौन है? क्या भगवान् आपके उद्धारमें मदद नहीं करेंगे? वे सहायता न करें, यह हो ही नहीं सकता। धर्म, शास्त्र, सन्त-महात्मा आदि सब-के-सब आपकी सहायता करेंगे, आपका पक्ष लेंगे।

आप अपने कर्तव्यकी तरफ दृष्टि रखें। दूसरोंके कर्तव्यकी तरफ दृष्टि ही नहीं जानी चाहिये। **भगवान् दर्शन दें न दें, कृपा करें न करें, यह उनकी मरजी है। यह हमारे हाथकी बात नहीं है। हम अपनी तरफसे उनके शरण हुए या नहीं हुए, हमने उनपर विश्वास किया या नहीं किया—यह बात सोचनेकी है तथा यही करनेकी है।** हम तो वही सोचें, जो हमारे हाथकी बात है। हम अपना काम ठीक करेंगे तो भगवान् अपने कर्तव्यका पालन करेंगे ही, निश्चित बात है। अगर नहीं करेंगे तो उनके ऊपर जिम्मेवारी है, हमारे ऊपर नहीं। कृपा करना, प्रेम करना, स्नेह करना आदि काम उनके हैं, हमारे नहीं। इसलिये आप अपनी तरफसे सबको स्वतन्त्र कर दो, सबको छुट्टी दे दो कि तुम्हारी जैसी मरजी, वैसे करो।

तेरे भावै कछु करौ, भलौ बुरौ संसार।
'नारायन' तू बैठि के, अपनौ भुवन बुहार॥

अपना सुधार करनेके लिये सब स्वतन्त्र हैं। दूसरेका सुधार कर देना हमारे हाथमें नहीं है। दूसरा पूछे तो प्रेमसे, आदरसे बता दो। वह करे तो उसकी मरजी, न करे तो उसकी मरजी। इसमें वह स्वतन्त्र है। क्या आप सबका कहना करते हो? सबका कहना आप नहीं करते, तो सब आपका कहना करें—यह कायदा है क्या? गीतामें कहा है—'**स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः**' (गीता १८। ४५) 'अपने-अपने कर्तव्यमें प्रीतिपूर्वक लगा हुआ मनुष्य परमात्माको प्राप्त कर लेता है।' परन्तु जो दूसरोंकी तरफ देखता है, उसकी उन्नति नहीं होती। **दूसरोंके कर्तव्यकी तरफ देखनेवाला स्वयं कर्तव्यच्युत हो जाता है। वह अपने कर्तव्यका ठीक तरहसे पालन नहीं कर सकता।** दूसरोंका कर्तव्य देखना अपना कर्तव्य नहीं है।

आप गड़बड़ी करते हैं और अपनेको क्षमा कर देते हैं, यह अन्याय है। **अपने प्रति न्याय करो और दूसरोंको क्षमा करो तो आपका जीवन शुद्ध, निर्मल हो जायगा। ज्ञान (समझ) अपने लिये है और प्राप्त परिस्थिति दूसरोंके हितके लिये है।** दूसरोंको उपदेश देते समय तो सब सन्त-महात्मा हो जाते हैं, पर अपना काम पड़नेपर सब भूल जाते हैं—

परोपदेशवेलायां शिष्टाः सर्वे भवन्ति हि।
विस्मरन्तीह शिष्टत्वं स्वकार्ये समुपस्थिते॥

आप अपना सुधार करनेमें तो स्वतन्त्र हैं, पर दूसरेका सुधार करनेमें परतन्त्र हैं। दूसरेकी गलती दिखायी दे तो चट अपनी तरफ देखो कि मैं क्या करता हूँ? अपनेमें गलती दीखे तो उसका सुधार करो। यह आपकी उन्नतिका असली रास्ता है।





॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

परमश्रद्धेय स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजकी वाणीपर आधारित

'गीता प्रकाशन' का शीघ्र कल्याणकारी साहित्य

१. **संजीवनी-सुधा**—'गीता साधक-संजीवनी' पर आधारित शोधपूर्ण पुस्तक।
२. **सीमाके भीतर असीम प्रकाश**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
३. **बिन्दुमें सिन्धु**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
४. **नये रास्ते, नयी दिशाएँ**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
५. **अनन्तकी ओर**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
६. **स्वातिकी बूँदें**—मार्मिक प्रवचनोंका सार-संग्रह।
७. **अनुभव-वाणी**—चुने हुए अनमोल वचन। अँग्रेजी-भाषान्तरसहित।
८. **सहज गीता** (अँग्रेजीमें भी)—नये पाठकोंके लिये 'साधक-संजीवनी' के अनुसार गीताका सरल हिन्दीमें भावार्थ।
९. **हे नाथ! मैं आपको भूलूँ नहीं** (गुजराती व अँग्रेजीमें भी)—इस प्रार्थनाके रहस्य तथा महत्त्वका अद्भुत वर्णन।
१०. **कृपामयी भगवद्गीता** (गुजरातीमें भी)—गीताकी महिमा और उसकी विलक्षणताका वर्णन।
११. **लक्ष्य अब दूर नहीं** (गुजरातीमें भी)—परमात्मप्राप्तिके विविध सुगम साधनोंका अनूठा संकलन।
१२. **सहज समाधि भली** (गुजरातीमें भी)—'चुप साधन' का विस्तृत विवेचन।
१३. **अपने प्रभुको पहचानें**—भगवान्के समग्ररूपका विस्तृत विवेचन।
१४. **एक सन्तकी अमूल्य शिक्षा** (क्या करें, क्या न करें)
१५. **विलक्षण सन्त, विलक्षण वाणी**—प० श्रीस्वामीजी महाराजकी वसीयत-सहित।
१६. **गोरक्षा—हमारा परम कर्तव्य**
१७. **क्या करें, क्या न करें ?**—आचार-व्यवहार संबंधी शास्त्र-वचनोंका अनूठा संग्रह।
१८. **भवन-भास्कर** (परिशिष्ट-सहित)—वास्तुशास्त्रकी महत्त्वपूर्ण बातें।
१९. **सुखपूर्वक जीनेकी कला**—सर्वोपयोगी प्रश्नोत्तर।
२०. **क्या आप ईश्वरको मानते हैं ?**—साधकोंके लिये चेतावनी।
२१. **बोलनेवाली श्रीमद्भगवद्गीता** (अर्थसहित)—इसे पढ़नेके साथ-साथ शुद्ध उच्चारणमें सुन भी सकते हैं।
२२. **ग्लोब गीता**—आकर्षक ग्लोबके आकारमें सम्पूर्ण गीता।

गीता प्रकाशन,
कार्यालय—माया बाजार, पश्चिमी फाटक,
गोरखपुर—273001 (उ०प्र०)
फोन—09389593845; 07668312429
e-mail: radhagovind10@gmail.com